* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये
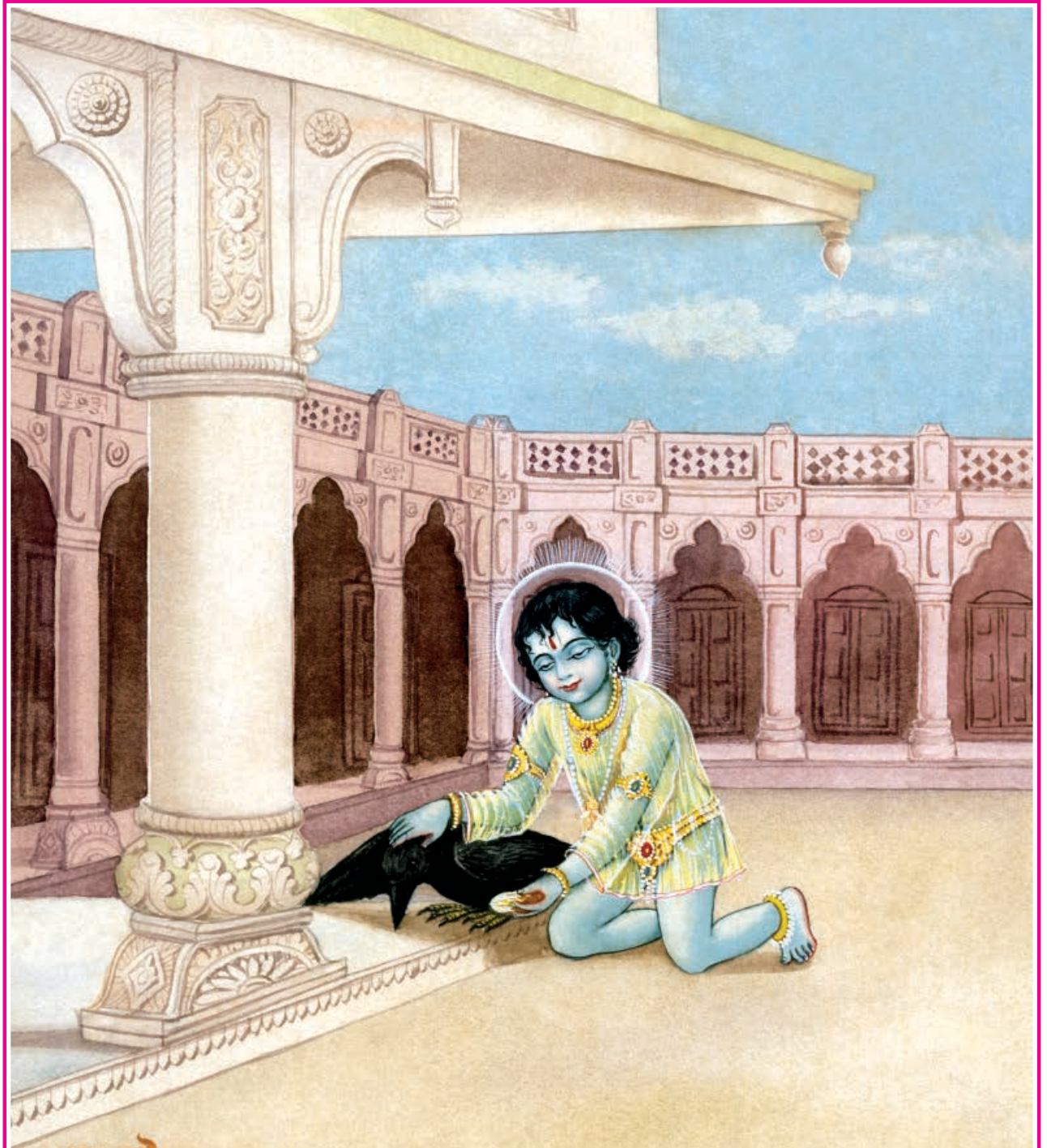
प्रभु श्रीरामकी काकभुशुण्डिपर कृपा

भगवती दुर्गाजी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम्।
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मनुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम्॥

वर्ष ९१ | गोरखपुर, सौर वैशाख, वि० सं० २०७४, श्रीकृष्ण-सं० ५२४३, अप्रैल २०१७ ई० | संख्या ४

पूर्ण संख्या १०८५

देवी दुर्गाका ध्यान

ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे॥

मैं तीन नेत्रोंवाली दुर्गा देवीका ध्यान करता हूँ, उनके श्रीअंगोंकी प्रभा बिजलीके समान है। वे सिंहके कन्धेपर बैठी हुई भयंकर प्रतीत होती हैं। हाथोंमें तलवार और ढाल लिये अनेक कन्याएँ उनकी सेवामें खड़ी हैं। वे अपने हाथोंमें चक्र, गदा, तलवार, ढाल, बाण, धनुष, पाश और तर्जनी मुद्रा धारण किये हुए हैं। उनका स्वरूप अग्निमय है तथा वे माथेपर चन्द्रमाका मुकुट धारण करती हैं। [श्रीदुर्गासप्तशती]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर वैशाख, वि० सं० २०७४, श्रीकृष्ण-सं० ५२४३, अप्रैल २०१७ ई०

विषय-सूची

विषय — पृष्ठ-संख्या

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क सजिल्द ₹२२०

पंचवर्षीय शुल्क सजिल्द ₹११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 50 (₹3000), पंचवर्षीय US$ 250 (₹15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | **09235400242/244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता-शुल्क -भुगतानहेतु-gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

कल्याण

***विश्वास करो*—**भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं—सर्वथा सन्निकट हैं। कभी किसी भी स्थितिमें वे तुम्हें अकेला नहीं छोड़ सकते। तुम इस बातपर विश्वास नहीं करते, इसीसे डरते और अपनेको असहाय मानते हो। भगवान्‌को साथ मान लो। वे सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान् हैं और तुम्हारे सुहृद् हैं। उनको साथ मानते ही तुम सर्वथा निर्भय और सुरक्षित हो जाओगे।

***याद रखो*—**भगवान्‌की सन्निधिमें अपनेको निर्भय और सुरक्षित जान लेनेपर कोई भी—कितनी भी बड़ी बाहरी विपत्ति—जो भगवान्‌की किसी गूढ़ अभिसन्धिसे तुम्हारे मंगलके लिये ही आती है—वह तुम्हारे मनमें तनिक भी भय और असहायताकी भावना नहीं उत्पन्न कर सकेगी।

***याद रखो*—**भगवान्‌की सन्निधि तुम्हारे मनकी सारी दुर्बलताओं—दुर्भावनाओंको नष्ट कर देगी। फिर तुमसे ऐसा कोई अनुचित कार्य—पाप होगा ही नहीं, जिसका फल दु:ख-संताप हो। फिर भी, यदि कभी किसी रूपमें दु:ख या विपत्तिके दर्शन होंगे तो तुम्हें उसमें भगवान्‌के मंगलमय संकेतका ही साक्षात्कार होगा।

***याद रखो*—**जो मनुष्य अपनेको भगवान्‌की सन्निधिमें जानकर जीवन-यापन करता है, वह न तो कभी कोई बुरा कर्म ही कर सकता है और न (बुरा कर्म न करनेपर भी) आयी हुई किसी विपत्ति, हानि, अकीर्ति या तिरस्कृतिसे ही उद्विग्न या विषादग्रस्त होता है। वह प्रत्येक स्थितिमें मंगलमय भगवान्‌की मंगल-मूर्तिका स्पर्श पाकर अपनेको सदा भगवत्कृपाके सुधासिन्धुमें गोते लगाते पाता है।

***याद रखो*—**तुम्हें जो कुछ प्राप्त है, प्राप्त हो रहा है और होगा, सब तुम्हारे परम सुहृद्, नित्यसंगी भगवान्‌की दृष्टिमें है और वस्तुत: उन्हींका मंगलविधान है। यदि तुम उसमें घबराते या शोक-विषाद करते हो तो मानना पड़ेगा कि परम मंगलमय भगवान्‌के मंगलविधानमें तुम्हारी श्रद्धा नहीं है।

***याद रखो*—**भगवान् जिसमें तुम्हारा कल्याण समझते हैं और उनके विधानसे जो कुछ (जीवन-मृत्यु, मान-अपमान, लाभ-हानि, सुख-दु:ख, सम्पत्ति-विपत्ति) तुम्हें मिलता है, उसीमें तुम्हारा यथार्थ कल्याण है। तुम जो चाहते हो और जिसमें अपना कल्याण समझते हो, सम्भव है वह तुम्हारे लिये अकल्याणकारी हो। अतएव अपनेको तथा अपने भविष्यको सर्वथा मंगलमय भगवान्‌पर छोड़कर निश्चिन्त हो जाओ। जहाँतक सात्त्विक बुद्धि काम दे, भगवान्‌की पूजाके भावसे सामने आये हुए कर्तव्यका पालन करते रहो। उसमें प्रमाद मत करो, परंतु यह कभी मत सोचो कि 'यों होता तो लाभ था और यों नहीं हुआ तो बड़ी हानि हो गयी।' याद रखो—अन्तमें जो कुछ होता है, वही यथार्थ होता है और उसीमें तुम्हारा लाभ है।

***विश्वास करो*—**भगवान् सदा मंगल ही करते हैं, यह दूसरी बात है कि उनके करनेका तरीका तुम्हें रुचिकर न हो, परंतु यदि तुम विश्वास कर लो तो फिर उनका तरीका भी रुचिकर हो जायगा और पहले जो अत्यन्त प्रतिकूल तथा भयानक दीखता था, वही अनुकूल तथा रमणीय दीखने लगेगा। फिर मृत्युमें भी तुम उनका मंगल-दर्शन पाकर मुग्ध हो जाओगे।

'शिव'

आवरणचित्र-परिचय—

काकभुशुण्डिपर कृपा

परब्रह्म परमात्मा श्रीहरि ने श्रीराम रूपसे अयोध्यामें अवतार लिया। वे वहाँ नित्य अनोखी लीलाएँ करते थे और अपने भक्तोंको विशेष सुख प्रदान करते थे। काकभुशुण्डि भगवान् श्रीरामके बालस्वरूपके अनन्य भक्त थे तथा अयोध्यामें जब श्रीरामका अवतार हुआ, तब महाराज दशरथके मणिमय आँगनमें बालरूप श्रीरामके आस-पास विहार करते थे। श्रीरामकी मधुर बाल-लीलाके दर्शनके साथ वे श्रीरामके द्वारा गिरायी गयी जूँठनको खाकर अपनेको धन्य करते थे।

काकभुशुण्डि श्रीराम-कथाके सबसे बड़े आचार्य हैं। जब भगवान् श्रीरामको नागपाशमें बँधा देखकर गरुड़जीको संशय हो गया था, तब इन्होंने ही श्रीरामका प्रभाव बताकर उन्हें मोहमुक्त किया था।

वही काकभुशुण्डि भगवान्की मधुर बाललीलाके दर्शन तथा प्रसादके लोभके कारण महाराज दशरथके आँगनमें श्रीरामके आस-पास विचरण कर रहे हैं। श्रीरामके हाथमें मालपुआ है। वे उसे काकभुशुण्डिकी ओर आगे बढ़ाते हैं। काकभुशुण्डि श्रीरामके हाथोंका दिव्य प्रसाद पानेके लिये ज्यों ही अपनी चोंच उनके नजदीक करते हैं, त्यों ही श्रीराम अपने मालपुआवाले हाथको पीछे खींच लेते हैं और ज्यों ही दूसरा हाथ काकभुशुण्डिको पकड़नेके लिये आगे बढ़ाते हैं, त्यों ही काकभुशुण्डि पीछे भाग जाते हैं।

भगवान् और भक्तकी यह विचित्र लीला कुछ समयतक इसी प्रकार चलती रहती है। भगवान्की लीलाएँ बड़ी ही विलक्षण हुआ करती हैं, उन्हें देखकर भगवान् शिव और ब्रह्मातक मोहित हो जाते हैं। फिर साधारण मनुष्यकी तो बात ही क्या है? आखिर काकभुशुण्डि-जैसे भक्त भी भगवान्की दिव्यातिदिव्य लीलाकी विचित्रतासे मोहित हो ही गये। उन्होंने सोचा—'जिन भगवान्को अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक समझकर मैं उपासना करता हूँ, आज वे भी मुझे पकड़नेमें असमर्थ हो गये।' इस प्रकारका संशय जैसे ही काकभुशुण्डिके मनमें आया, वैसे ही श्रीरामने काकभुशुण्डिको पकड़नेके लिये अपने हाथको आगे बढ़ा दिया। काकभुशुण्डि भी अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर उड़ चले। ब्रह्माण्डके सात आवरणोंको भेदकर जहाँतक तीनों लोकोंमें उनके अन्दर उड़नेकी शक्ति थी, वे उड़ते गये और भगवान्का हाथ उन्हें पकड़नेके लिये उनके पीछे बढ़ता ही गया। जब काकभुशुण्डि पूरी तरह थक गये और उनके अन्दर उड़नेकी थोड़ी भी शक्ति शेष नहीं रही, तब भगवान्ने उन्हें पकड़कर उदरस्थ कर लिया।

भगवान्के उदरमें काकभुशुण्डिने अनेकों ब्रह्माण्डोंका दर्शन किया। करोड़ों सूर्य, चन्द्रमा, शिव, ब्रह्मा आदि उन्हें भगवान्के उदरमें दिखायी दिये। यहाँतक कि जिसको उन्होंने न कभी देखा था, न सुना था, ऐसी अनेक विचित्रताएँ काकभुशुण्डिने भगवान्के उदरमें देखीं। उसके बाद भगवान्ने उन्हें उगल दिया। फिर वही दृश्य सामने था, शिशुब्रह्म हाथमें मालपुआ लिये मुसकरा रहा था। यह बाल-चरित्र देखकर और उदरमें देखी हुई उस प्रभुताका स्मरणकर काकभुशुण्डिको शरीरकी सुधि भूल गयी और वे 'हे आर्तजनोंके रक्षक! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये, पुकारते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े। तदनन्तर प्रभुने उन्हें प्रेमविह्वल देखकर अपनी मायाकी प्रभुताको रोक लिया। प्रभुने अपना कर-कमल उनके सिरपर रख दिया। इस तरह काकभुशुण्डिका सारा भ्रम समाप्त हो गया।

[श्रीरामचरितमानस]

शिव-तत्त्व

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

[गतांक ३ पृ०-सं० ९ से आगे]

श्रीरामचरितमानसमें भी भगवान् शंकरने पार्वतीजीसे भगवान् श्रीरामके सम्बन्धमें कहा है—

अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसें। जलु हिम उपल बिलग नहिं जैसें॥
राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥
राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना। परमानंद परेस पुराना॥

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके परब्रह्म परमात्मा होनेका विविध ग्रन्थोंमें उल्लेख है। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें कथा है कि एक महासर्गके आदिमें भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य अंगोंसे भगवान् नारायण और भगवान् शिव तथा अन्यान्य सब देवी-देवता प्रादुर्भूत हुए। वहाँ श्रीशिवजीने भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए कहा है—

विश्वं विश्वेश्वरेशं च विश्वेशं विश्वकारणम्।
विश्वाधारं च विश्वस्तं विश्वकारणकारणम्॥
विश्वरक्षाकारणं च विश्वघ्नं विश्वजं परम्।
फलबीजं फलाधारं फलं च तत्फलप्रदम्॥

(ब्रह्मवै० १। ३। २५-२६)

'आप विश्वरूप हैं, विश्वके स्वामी हैं, विश्वके स्वामियोंके भी स्वामी हैं, विश्वके कारणके भी कारण हैं, विश्वके आधार हैं, विश्वस्त हैं, विश्वरक्षक हैं, विश्वका संहार करनेवाले हैं और नाना रूपोंसे विश्वमें आविर्भूत होते हैं। आप फलोंके बीज हैं, फलोंके आधार हैं, फलस्वरूप हैं और फलदाता हैं।'

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं भी अपने लिये श्रीमुखसे कहा है—

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥

(१४। २७)

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥
तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च।
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन॥

(९। १८-१९)

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

(७। ७)

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(१०। ३)

'हे अर्जुन! उस अविनाशी परब्रह्मका और अमृतका तथा नित्य-धर्मका एवं अखण्ड एकरस आनन्दका मैं ही आश्रय हूँ; अर्थात् उपर्युक्त ब्रह्म, अमृत, अव्यय और शाश्वत धर्म तथा ऐकान्तिक सुख—यह सब मैं ही हूँ तथा प्राप्त होनेयोग्य, भरण-पोषण करनेवाला, सबका स्वामी, शुभाशुभका देखनेवाला, सबका वासस्थान, शरण लेनेयोग्य, प्रत्युपकार न चाहकर हित करनेवाला, उत्पत्ति-प्रलयरूप, सबका आधार, निधान[1] और अविनाशी कारण भी मैं ही हूँ। मैं ही सूर्यरूपसे तपता हूँ तथा वर्षाको आकर्षण करता हूँ और बरसाता हूँ एवं हे अर्जुन! मैं ही अमृत और मृत्यु एवं सत् और असत्—सब कुछ मैं ही हूँ।'

'हे धनंजय! मेरेसे अतिरिक्त किंचिन्मात्र भी दूसरी वस्तु नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् सूत्रमें मणियोंके सदृश मेरेमें गुँथा हुआ है। जो मुझको अजन्मा (वास्तवमें जन्मरहित), अनादि[2] तथा लोकोंका महान् ईश्वर तत्त्वसे जानता है, वह मनुष्योंमें ज्ञानवान् पुरुष सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

ऊपरके इन अवतरणोंसे यह सिद्ध हो गया कि

१. प्रलयकालमें सम्पूर्ण भूत सूक्ष्मरूपसे जिसमें लय होते हैं, उसका नाम 'निधान' है।
२. अनादि उसको कहते हैं, जो आदिरहित हो और सबका कारण हो।

भगवान् श्रीशिव, विष्णु, ब्रह्मा, शक्ति, राम, कृष्ण—तत्त्वत: एक ही हैं। इस विवेचनपर दृष्टि डालकर विचार करनेसे यही निष्कर्ष निकलता है कि सभी उपासक एक सत्य, विज्ञानानन्दघन परमात्माको मानकर सच्चे सिद्धान्तपर ही चल रहे हैं। नाम-रूपका भेद है, परंतु वस्तु-तत्त्वमें कोई भेद नहीं। सबका लक्ष्यार्थ एक ही है। ईश्वरको इस प्रकार सर्वोपरि, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, निर्विकार, नित्य, विज्ञानानन्दघन समझकर शास्त्र और आचार्योंके बतलाये हुए मार्गके अनुसार किसी भी नाम-रूपसे उसकी जो उपासना की जाती है, वह उस एक ही परमात्माकी उपासना है।

विज्ञानानन्दघन सर्वव्यापी परमात्मा शिवके उपर्युक्त तत्त्वको न जाननेके कारण ही कुछ शिवोपासक भगवान् विष्णुकी निन्दा करते हैं और कुछ वैष्णव भगवान् शिवकी निन्दा करते हैं। कोई-कोई यदि निन्दा और द्वेष नहीं भी करते हैं तो प्राय: उदासीनसे तो रहते ही हैं, परंतु इस प्रकारका व्यवहार वस्तुत: ज्ञानरहित समझा जाता है। यदि यह कहा जाय कि ऐसा न करनेसे एकनिष्ठ अनन्य उपासनामें दोष आता है, तो वह ठीक नहीं है, जैसे पतिव्रता स्त्री एकमात्र अपने पतिको ही इष्ट मानकर उसके आज्ञानुसार उसकी सेवा करती हुई, पतिके माता-पिता, गुरुजन तथा अतिथि-अभ्यागत और पतिके अन्यान्य सम्बन्धी और प्रेमी बन्धुओंकी भी पतिके आज्ञानुसार पतिकी प्रसन्नताके लिये यथोचित आदरभावसे मन लगाकर विधिवत् सेवा करती है और ऐसा करती हुई भी वह अपने एकनिष्ठ पातिव्रत-धर्मसे जरा भी न गिरकर उलटे शोभा और यशको प्राप्त होती है। वास्तवमें दोष पाप-बुद्धि, भोग-बुद्धि और द्वेष-बुद्धिमें है अथवा व्यभिचार और शत्रुतामें है। यथोचित वैध-सेवा तो कर्तव्य है। इसी प्रकार परमात्माके किसी एक नाम-रूपको अपना परम इष्ट मानकर उसकी अनन्यभावसे भक्ति करते हुए ही अन्यान्य देवोंकी भी अपने इष्टदेवके आज्ञानुसार उसी स्वामीकी प्रीतिके लिये श्रद्धा और आदरके साथ यथायोग्य सेवा करनी चाहिये। उपर्युक्त अवतरणोंके अनुसार जब एक नित्य विज्ञानानन्दघन ब्रह्म ही हैं तथा वास्तवमें उनसे भिन्न कोई दूसरी वस्तु ही नहीं है, तब किसी एक नाम-रूपसे द्वेष या उसकी निन्दा, तिरस्कार और उपेक्षा करना उस परब्रह्मसे ही वैसा करना है। कहीं भी श्रीशिव या श्रीविष्णुने या श्रीब्रह्माने एक-दूसरेकी न तो निन्दा आदि की है और न निन्दा आदि करनेके लिये किसीसे कहा ही है, बल्कि निन्दा आदिका निषेध और तीनोंको एक माननेकी प्रशंसा की है। शिवपुराणमें कहा गया है—

एते परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम्।
परस्परेण वर्धन्ते परस्परमनुव्रता:॥
क्वचिद्ब्रह्मा क्वचिद्विष्णु: क्वचिद्रुद्र: प्रशस्यते।
नानेव तेषामाधिक्यमैश्वर्यं चातिरिच्यते॥
अयं परस्त्वयं नेति संरम्भाभिनिवेशिन:।
यातुधाना भवन्त्येव पिशाचा वा न संशय:॥

'ये तीनों (ब्रह्मा, विष्णु और शिव) एक-दूसरेसे उत्पन्न हुए हैं, एक-दूसरेको धारण करते हैं, एक-दूसरेके द्वारा वृद्धिंगत होते हैं और एक-दूसरेके अनुकूल आचरण करते हैं। कहीं ब्रह्माकी प्रशंसा की जाती है, कहीं विष्णुकी और कहीं महादेवकी। उनका उत्कर्ष एवं ऐश्वर्य एक-दूसरेकी अपेक्षा इस प्रकार अधिक कहा है, मानो वे अनेक हों। जो संशयात्मा मनुष्य यह विचार करते हैं कि अमुक बड़ा है और अमुक छोटा है—वे अगले जन्ममें राक्षस अथवा पिशाच होते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है।'

स्वयं भगवान् शिव श्रीविष्णुभगवान्से कहते हैं—

मद्दर्शने फलं यद्वै तदेव तव दर्शने।
ममैव हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये ह्यहम्॥
उभयोरन्तरं यो वै न जानाति मतो मम।

(शिव० ज्ञान० ४। ६१-६२)

'मेरे दर्शनका जो फल है, वही आपके दर्शनका है। आप मेरे हृदयमें निवास करते हैं और मैं आपके हृदयमें रहता हूँ। जो हम दोनोंमें भेद नहीं समझता, वही मुझे मान्य है।'

भगवान् श्रीराम भगवान् श्रीशिवसे कहते हैं—

ममासि हृदये शर्व भवतो हृदये त्वहम्।
आवयोरन्तरं नास्ति मूढाः पश्यन्ति दुर्धियः॥
ये भेदं विदधत्यद्धा आवयोरेकरूपयोः।
कुम्भीपाकेषु पच्यन्ते नराः कल्पसहस्रकम्॥
ये त्वद्भक्ताः सदासंस्ते मद्भक्ता धर्मसंयुताः।
मद्भक्ता अपि भूयस्या भक्त्या तव नतिङ्कराः॥

(पद्म० पाता० ४६। २०—२२)

'आप शंकर मेरे हृदयमें रहते हैं और मैं आपके हृदयमें रहता हूँ। हम दोनोंमें कोई भेद नहीं है। मूर्ख एवं दुर्बुद्धि मनुष्य ही हमारे अन्दर भेद समझते हैं। हम दोनों एकरूप हैं, जो मनुष्य हम दोनोंमें भेद-भावना करते हैं, वे हजार कल्पपर्यन्त कुम्भीपाक नरकोंमें यातना सहते हैं। जो आपके भक्त हैं, वे धार्मिक पुरुष सदा ही मेरे भक्त रहे हैं और जो मेरे भक्त हैं, वे प्रगाढ़ भक्तिसे आपको भी प्रणाम करते हैं।

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण भी भगवान् श्रीशिवसे कहते हैं—

त्वत्परो नास्ति मे प्रेयांस्त्वं मदीयात्मनः परः।
ये त्वां निन्दन्ति पापिष्ठा ज्ञानहीना विचेतसः॥
पच्यन्ते कालसूत्रेण यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
कृत्वा लिङ्गं सकृत्पूज्य वसेत्कल्पायुतं दिवि॥
प्रजावान् भूमिमान् विद्वान् पुत्रबान्धववांस्तथा।
ज्ञानवान्मुक्तिमान् साधुः शिवलिङ्गार्चनाद्भवेत्॥
शिवेति शब्दमुच्चार्य प्राणांस्त्यजति यो नरः।
कोटिजन्मार्जितात् पापान्मुक्तो मुक्तिं प्रयाति सः॥

(ब्रह्मवैवर्त० ६। ३१-३२, ४५, ४७)

'मुझे आपसे बढ़कर कोई प्यारा नहीं है, आप मुझे अपनी आत्मासे भी अधिक प्रिय हैं। जो पापी, अज्ञानी एवं बुद्धिहीन पुरुष आपकी निन्दा करते हैं, जबतक चन्द्र और सूर्यका अस्तित्व रहेगा तबतक वे कालसूत्रमें (नरकमें) पचते रहेंगे। जो शिवलिंगका निर्माणकर एक बार भी उसकी पूजा कर लेता है, वह दस हजार कल्पतक स्वर्गमें निवास करता है, शिवलिंगके अर्चनसे मनुष्यको प्रजा, भूमि, विद्या, पुत्र, बान्धव, श्रेष्ठता, ज्ञान एवं मुक्ति सब कुछ प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य 'शिव' शब्दका उच्चारणकर शरीर छोड़ता है, वह करोड़ों जन्मोंके संचित पापोंसे छूटकर मुक्तिको प्राप्त हो जाता है।'

भगवान् विष्णु श्रीमद्भागवत (४। ७। ५४)-में दक्षप्रजापतिके प्रति कहते हैं—

त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम्।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति॥

'हे विप्र! हम तीनों एकरूप हैं और समस्त भूतोंकी आत्मा हैं, हमारे अन्दर जो भेद-भावना नहीं करता, निःसन्देह वह शान्ति (मोक्ष)-को प्राप्त होता है।'

श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीरामने कहा है—

संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥
औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥

ऐसी अवस्थामें जो मनुष्य दूसरेके इष्टदेवकी निन्दा या अपमान करता है, वह वास्तवमें अपने ही इष्टदेवका अपमान या निन्दा करता है। परमात्माकी प्राप्तिके पूर्वकालमें परमात्माका यथार्थ रूप न जाननेके कारण भक्त अपनी समझके अनुसार अपने उपास्यदेवका जो स्वरूप कल्पित करता है, वास्तवमें उपास्यदेवका स्वरूप उससे अत्यन्त विलक्षण है तथापि उसकी अपनी बुद्धि, भावना तथा रुचिके अनुसार की हुई सच्ची और श्रद्धायुक्त उपासनाको परमात्मा सर्वथा सर्वांशमें स्वीकार करते हैं; क्योंकि ईश्वर-प्राप्तिके पूर्व ईश्वरका यथार्थ स्वरूप किसीके भी चिन्तनमें नहीं आ सकता। अतएव ईश्वरके किसी भी नाम-रूपकी निष्कामभावसे उपासना करनेवाला पुरुष शीघ्र ही उस नित्य विज्ञानानन्दघन परमात्माको प्राप्त हो जाता है। हाँ, सकाम-भावसे उपासना करनेवालेको विलम्ब हो सकता है तथापि सकाम-भावसे उपासना करनेवाला भी श्रेष्ठ और उदार ही माना गया है (गीता ७। १८); क्योंकि अन्तमें वह भी ईश्वरको ही प्राप्त होता है। **'मद्भक्ता यान्ति मामपि'** (गीता ७। २३)। **[क्रमशः]**

वृन्दाका हृदय ही वृन्दावन

(ब्रह्मलीन सन्त स्वामी श्रीगंगानन्दजी भारती)

तारकासुरने तपस्या की तो उसने गणित लगाया। राक्षसोंका गणित बड़ा विचारयुक्त होता है, पर भौतिकतासे युक्त होनेके कारण, उनकी बुद्धि इस बातको नहीं सोच पाती है कि जितनी बुद्धि हममें है, उससे अनन्त-अनन्त गुना, जो महान् शक्ति है, उसके अन्दर बुद्धि भी अनन्त है। इसपर विचार नहीं कर पाते हैं, तो उसने विचार किया कि भगवान् शंकर तो समाधिमें बैठे हुए हैं, ***'लागि समाधि अखंड अपारा'***, उनकी समाधि अखण्ड है, वह समाधिसे जागेंगे ही नहीं। दूसरी बात भगवान् शंकर जब उस परम तत्त्वके ध्यानमें मग्न हैं तो लौकिक सुखकी तरफ उनकी वृत्ति जा ही नहीं सकती है। परमानन्दको जो प्राप्त है, वह लौकिक सुन्दरताकी ओर क्यों निगाह करेगा? तीसरी बात उसने विचार किया कि भगवान् शंकर अक्षय वीर्य हैं, उनका वीर्य क्षय नहीं होगा। चौथी बात वह सोचता है कि भगवान् शंकरका तेज—उनका बीज इतना शक्तिशाली है कि त्रैलोक्यमें ऐसी कोई स्त्री नहीं है, जो उस बीजको गर्भमें धारण कर सके। अत: उसने वरदान क्या माँगा, ***संभु सुक्र संभूत सुत*** से ही मेरा मरण हो। ऐसा इसलिये कि भगवान् शंकर, ब्रह्मा, विष्णु—इनके अन्दर यह शक्ति है कि अपने संकल्पसे भी सृष्टि बना सकते हैं। जो उनके संकल्पसे वस्तु प्रकट होती है, उसके वे जनक हैं अर्थात् उसके पिता हैं।

तो उसने शर्त क्या लगायी कि **संभु सुक्र**, उनके बीजसे, **संभूत** सुत, उनके बीजसे जो पुत्र प्रकट हो, ***'एहि जीतइ रन सोइ'***, वह हमको जीते। उसके अलावा हम अजेय हैं सबसे। ऐसा विचार किया उसने कि न ऐसा हो सकता है, न हमारा विनाश होगा कभी।

असत् कार्य करनेसे मनुष्यके आयु, यश, तेज, तप सब क्षीण हो जाते हैं। यह वरदान पाकर वह भी भयमुक्त हो गया था। पर असत् कार्योंके कारण उसका वरदान व्यर्थ हो गया, भगवान् शंकरकी समाधि टूटी, गिरिजासे उनका विवाह हुआ और संभु सुक्र संभूत सुत कार्तिकेयके द्वारा उसकी मृत्यु हुई।

उधर जलन्धरका भी प्रसंग द्रष्टव्य है, उसने अपनी पत्नी वृन्दाको बताया कि पतिव्रता स्त्री कभी वैधव्यको प्राप्त नहीं हो सकती है। ऐसा वेदोंका निर्णय है, श्रुतियोंका निर्णय है कि जो पतिव्रता स्त्री है, वह कभी भी वैधव्यको प्राप्त नहीं हो सकती है। वृन्दाने पातिव्रतधर्मका पालन करना प्रारम्भ कर दिया। उसके पतिव्रतके तेजसे भी जलन्धर अजेय और अमर हो गया। विचार तो उसने सब कुछ किया, पर अन्तमें असत् कार्य करनेसे उसका जो तप, तेज था; वह क्षीण हो गया। उसकी पत्नी तो पतिव्रता थी और स्वयं उसने अनेक सतियोंका, पतिव्रताओंका सतीत्व खण्डित किया।

एक दिन उसने विचार किया कि हम तो सब प्रकार अजेय हैं, ***'सुंदरता मरजाद भवानी, जाइ न कोटिहुँ बदन बखानी'***, भगवती पार्वती सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी हैं, सुन्दरताकी वे पराकाष्ठा हैं, तो सोचता है कि उन्हें प्राप्त करनेका सुअवसर कैसे प्राप्त हो सकता है? कामी पुरुष नित्य नवीन सुन्दरता ढूँढ़ा करता है तो उसने पार्वतीजीके दर्शन किये। दर्शन करके वह उनके स्वरूपपर आसक्त होता है और विचार करता है कि इनसे ज्यादा सुन्दर और कौन हो सकती है, पर यह तो सती है, पतिव्रता है, क्या करना चाहिये? उसने शंकर भगवान्का छद्म वेश बनाया और भगवती पार्वतीके सामने पहुँचा और कामातुर होकर उनकी ओर बढ़ा, पर उनकी शक्ति और तेजके सामने उसका वीर्य उनकी सुन्दरताको देख करके ही स्खलित हो गया! तब पार्वतीजी विचार करती हैं कि अरे! यह तो कोई दुष्ट है, भगवान् शंकर तो अक्षय वीर्य हैं, अत: यह अवश्य कोई दुष्ट है। तब उन्होंने शाप दिया कि जा, जिसके पतिव्रत धर्मकी शक्तिसे तू अनेक पतिव्रताओंके सतीत्वको खण्डित करना चाहता है और करता घूम रहा है, उसके पतिव्रतका विनाश होनेपर, तेरा भी विनाश होगा। इस शापके कारण जलन्धरपत्नी वृन्दाका भगवान् विष्णुने ***'छल करि टारेउ तासु ब्रत'*** उसका पतिव्रत खण्डित किया, तब जलन्धरका विनाश हुआ।

जलन्धर सतीत्व धर्मकी आड़ लेकर अधर्मका पोषण कर रहा था, इसलिये ***'छल करि टारेउ तासु ब्रत'*** वृन्दाने अखण्ड तप करके अखण्ड पतिकी प्राप्ति

चाही थी, अखण्ड सतीत्व धारण करके अखण्ड पतिकी प्राप्ति; तो अखण्ड पति हैं कौन? वही विष्णु ही हैं। इसलिये विष्णुने ही उसकी तपस्याके कारण उसका सतीत्व खण्डित किया। वृन्दाके सतीत्वके बलपर जलन्धर अनाचार और अधर्म कर रहा था, अनेक सतियोंके सतीत्वको वह खण्डित कर रहा था। जब जलन्धरकी पत्नी वृन्दा सती हो गयी। तब भगवान् उसकी चिताकी भस्मके ऊपर लोटने लगे और चिल्लाने लगे—हाय वृन्दा, हाय वृन्दा, हाय वृन्दा! तब वृन्दाका सूक्ष्म शरीर प्रकट होता है, वह कहती है—हे नाथ! यह आप क्या क्रीड़ा कर रहे हैं? हम तो आपकी ही रहीं और आपकी ही हैं, पर उस शरीरसे हम आपको नहीं प्राप्त हो सकते थे। यह शरीर आपका है, इसलिये कृपा करके आप हमारे हृदयके ऊपर ही अपने चरण रखें। आपके चरण हमारे हृदयके ऊपरसे कभी हटें नहीं। यह वृन्दावन है क्या, वृन्दाका हृदय ही है वृन्दावन। उसमें जो यमुनाजी बह रही हैं, वे उसके हृदयके प्रेमकी अजस्त्र धाराका प्रवाहरूप हैं। उसीके किनारे वेतसीका वन है, वहाँपर बैठ करके भगवान् कृष्ण अनेक रसमयी लीलाएँ करते हैं, करते चले आये हैं, करते रहेंगे। भूतकालमें भी, वर्तमानमें भी, भविष्यमें भी, कर रहे हैं, करते रहेंगे।

[प्रेषक—श्रीअनिलजी सक्सेना]

दुर्व्यवहारसे दुर्गति

जो पुरुष अपनी साध्वी स्त्री अथवा अन्यान्य आश्रितोंके साथ दुर्व्यवहार करते हैं, थोड़ी-सी भूलके लिये बात-बातमें क्रोधातुर होकर उन्हें डाँटते-फटकारते, उनका तिरस्कार करते और उन्हें जली-कटी सुनाया करते हैं, उनके पाप निरन्तर बढ़ते रहते हैं और वे लोक-परलोकमें भयानक दु:खोंके भागी होते हैं। ऐसे लोगोंपर भगवान्‌की कृपा नहीं होती और उनके पूजा-पाठ, धर्म-कर्म, तीर्थ-व्रत आदि भी सफल नहीं होते। पद्मपुराणमें कहा गया है—

पतिव्रतरतां भार्यां सुगुणां पुण्यवत्सलाम्॥
तामेवापि परित्यज्य धर्मकार्यं प्रयाति यः।
वृथा तस्य कृतः सर्वो धर्मो भवति नान्यथा॥
भार्यां विना हि यो लोके धर्मं साधितुमिच्छति।
विफलो जायते लोके नान्नमश्नन्ति देवताः॥

(पद्म० भूमिखण्ड अ० ५९)

'जो पुरुष अपनी सद्‌गुणवती, पुण्यानुरागिणी पतिव्रता पत्नीका परित्यागकर धर्मके लिये तीर्थादिमें बाहर जाता है, उसका किया हुआ सारा धर्म व्यर्थ होता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।'

'जो पुरुष अपनी पत्नीको छोड़कर धर्मसाधनकी इच्छा करता है, वह संसारमें असफल होता है और उसका अन्न देवता ग्रहण नहीं करते।'

विशेष करके जो पुरुष अपनी पुत्रादिरहित पत्नीको निराश्रय छोड़कर संसार-त्याग करनेकी इच्छा करता है, वह वास्तवमें बहुत बड़ा प्रमाद करता है; क्योंकि ऐसी परित्यक्ता स्त्री यदि विपरीत परिस्थितिमें पड़कर किसी प्रकार भी पथभ्रष्ट हो दुश्चरित्रा हो जाती है तो उस पुरुषकी कई पीढ़ियोंतकके पितरोंको नरकोंमें जाना पड़ता है और इसका सारा दायित्व उस पुरुषपर होता है। पतिके दुर्व्यवहारसे अत्यन्त पीड़ित होकर जिसकी स्त्री आत्मघात आदि दुष्कर्म कर बैठती है, उस पातकी पुरुषको इस लोक और परलोकमें भयानक दु:खोंकी प्राप्ति होती है।

जो पुरुष अपनी पत्नीका परित्याग करके परस्त्रीमें आसक्त होता है या दूसरी स्त्रीको पत्नी बनाता है, वह जन्मान्तरमें स्त्रीयोनिको प्राप्त होकर विधवा होता है—

यः स्वनारीं परित्यज्य निर्दोषां कुलसम्भवाम्।
परदाररतो हि स्यादन्यां वा कुरुते स्त्रियम्।
सोऽन्यजन्मनि देवेशि स्त्री भूत्वा विधवा भवेत्॥

(स्कन्दपुराण)

इसी प्रकार जो स्त्री स्वेच्छासे या किसीके प्रस्तावसे सम्मत होकर परपुरुषमें आसक्त हो कुकृत्य करती है, पतिको कष्ट पहुँचाने तथा पवित्र सतीत्व-धर्मसे डिगनेके कारण उसकी संतान और धनका नाश हो जाता है, परलोकमें उसे भयानक नरक-यन्त्रणा भोगनी पड़ती है, जवानीमें विधवा होना पड़ता है और उसके बाद विविध दु:ख-संतापमयी घृणित कुयोनियोंमें जन्म लेकर घोर क्लेशयुक्त जीवन बिताना पड़ता है।

त्यागका स्वरूप और साधन

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

शास्त्रोंकी ऐसी घोषणा है और सभी विचारशील पुरुष इस बातको स्वीकार करते हैं कि मनुष्य-जीवनका चरम लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है। संसारमें बहुत-से लोग इस लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये यत्किंचित् चेष्टा भी करते हैं, परंतु ऐसे सौभाग्यशाली पुरुष बहुत थोड़े होते हैं, जो शीघ्र ही लक्ष्यको प्राप्त कर सकते हों। शास्त्रकारोंने और अनुभवी संतोंने भगवत्प्राप्तिके मार्गमें कई विघ्न ऐसे बतलाये हैं, जिनको पार किये बिना भगवान्‌की प्राप्तिके मार्गपर आगे बढ़ना बहुत ही कठिन है। उन विघ्नोंमें प्रधान विघ्न हैं—अहंकार, ममता, कामना और आसक्ति। अज्ञान या मोह तो इन सबका मूल कारण है ही। अज्ञानके नाशसे इन सबका नाश अपने-आप हो जाता है। अज्ञान कहते हैं न जाननेको। न जानना भगवान्‌के स्वरूपका। जिनको भगवान्‌के स्वरूपकी जानकारी हो जाती है, वे इन सारे विघ्नोंको सहज ही पार कर जाते हैं। बल्कि उनके लिये इन विघ्नोंका सर्वथा नाश ही होता है, परंतु जबतक अज्ञानका नाश न हो, जबतक भगवान्‌के तत्त्व-स्वरूपकी जानकारी न हो, तबतक क्या हाथ-पर-हाथ धरे यों ही बैठे रहना चाहिये? नहीं, आसक्ति, कामना, ममता और अहंकारका प्रयोग बुद्धिमानीपूर्वक भगवान्‌में करना चाहिये। आदर्श ऐसा होना चाहिये कि एकमात्र श्रीभगवान्‌में ही आसक्ति हो, एकमात्र श्रीभगवान्‌को पानेकी ही अनन्य कामना हो, एकमात्र श्रीभगवच्चरणोंमें ही अहैतुकी ममता हो और एकमात्र श्रीभगवान्‌के दासत्वका ही भक्तहृदयमें शान्ति-सुधा बरसानेवाला आदरणीय अहंकार हो। इस प्रकार इन चारोंके दिशापरिवर्तनका अभ्यास करनेसे क्रमशः इनका दूषित रूप नष्ट होता जायगा। तब ये मोहके पोषक न होकर उसका नाश करनेमें सहायता देंगे और ज्यों-ज्यों मोहका नाश होगा, त्यों-ही-त्यों भगवान्‌के स्वरूपकी जानकारी होगी, और ज्यों-ज्यों भगवान्‌के स्वरूपका ज्ञान होगा, त्यों-ही-त्यों एकमात्र उन्हींके साथ इन चारोंका सम्बन्ध बढ़ जायगा। फिर तो इनका नाम भी बदल जायगा और इन्हें विशुद्ध अव्यभिचारिणी भक्तिके रूपमें पाकर भक्त कृतार्थ होगा। उस भक्तिके द्वारा भगवान्‌की यथार्थ जानकारी—भगवत्तत्त्वका सम्यक् ज्ञान होगा और उस ज्ञानका प्रादुर्भाव होते ही भक्त अपने भगवान्‌का साक्षात्कार प्राप्त करके कृतार्थ हो जायगा।

विषयोंके दुःख-दोषभरे भयंकर स्वरूपका और भगवान्‌के चिदानन्दमय अनन्त सौन्दर्य-माधुर्यका—भगवान्‌के स्वरूपका, स्वभावका हमें ज्ञान नहीं है; इसीसे हमारी चित्तवृत्तियोंकी प्रवृत्ति भगवान्‌की ओर न होकर विषयोंकी ओर हो रही है। यदि श्रीभगवान्‌की परमानन्दरूपता और विषयोंकी भयानकतापर वस्तुतः विश्वास हो जाय तो मनुष्यका मन विषयोंकी ओर कभी नहीं जा सकता। आज यदि किसीसे कहा जाय कि तुम्हें सौ रुपये दिये जायँगे, तुम एक तोला अफीम या थोड़ा-सा संखिया खा लो, तो कोई भी खानेको तैयार नहीं होगा; क्योंकि अफीम और संखिया खानेसे मृत्यु हो जायगी, इस बातपर उसका शंकारहित निश्चित विश्वास है। भगवान्‌ने कहा है—'यह लोक अनित्य और असुख (सुखरहित) है अथवा यह जन्म अनित्य और दुःखालय है, इसे पाकर तुम मुझको ही भजो।' यदि भगवान्‌के इस कथनपर शंकारहित निश्चित विश्वास होता और यदि इन वचनोंके अनुसार जगत्‌के विषय हमें यथार्थमें दुःखरूप और अनित्य जान पड़ते तो हम उनमें क्यों रमते? और यदि भगवान्‌के अखिल-आनन्दसुधासिन्धु स्वरूपपर जरा भी विश्वास होता तो हम क्यों उसकी उपेक्षा करते? परंतु ऐसा करते हैं, इसलिये यही सिद्ध होता है कि हम पढ़ते, सुनते और कहते तो हैं, परंतु यथार्थमें हमें इन बातोंपर पूरा विश्वास नहीं है। इसीसे हम इन बातोंकी परवा न करके विषयोंकी ओर दौड़ रहे हैं और जैसे दीपककी ज्योतिके रूप-मोहमें फँसकर उसकी ओर जानेवाला पतंग जलकर भस्म हो जाता है, उसी प्रकार हम भी भस्म हो जाते हैं।

हमारी वृत्तियाँ सदा ही बहिर्मुखी रहती हैं, विषयोंमें—कार्यजगत्‌में ही लगी रहती हैं। इसमें जहाँ-जहाँ हमें इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाले पदार्थ दीख-सुन पड़ते हैं, वहाँ-वहाँ ही हमारा चित्त जाता है। हम उन्हींमें सुख खोजते हैं, परंतु यह नहीं जानते कि दिनके साथ रातकी

भाँति इस सुखका सहचर दुःख सदा इसके साथ रहता है। हम सुख चाहते हैं और दुःखसे बचना चाहते हैं, इसीलिये हमें दुःख भोगना पड़ता है; यदि वास्तवमें हमें दुःखसे बचना है तो सुखकी स्पृहा भी छोड़ देनी पड़ेगी। हम उस परम सुखको तो चाहते नहीं जो सदा रहता है, जो कभी घटता-बढ़ता नहीं, जो असीम और अनन्त है। हम तो चाहते हैं क्षणिक इन्द्रियसुखको, जो वास्तवमें है नहीं, केवल भ्रमसे भासता है और बिजलीकी भाँति एक बार चमककर तुरंत ही नष्ट हो जाता है, परंतु हम अबोध इस बातको जानते नहीं, इसीसे उसके पीछे पड़े रहते हैं और एक दुःखके गड़हेसे निकलकर तुरंत ही दूसरा गहरा गड़हा खोदने लगते हैं!!

इस इन्द्रियसुखके प्रधान साधन माने गये हैं—दो पदार्थ। एक 'स्त्री' और दूसरा 'धन'। इसीलिये शास्त्रोंने बड़े जोरोंसे इनकी बुराइयोंकी घोषणा करके कामिनी-कांचनके त्यागका बार-बार उपदेश किया है। बात यह है कि विषयासक्त मनुष्यकी बहिर्मुखी इन्द्रियाँ स्वाभाविक ही आपातरमणीय विषयोंकी ओर दौड़ती हैं। कामिनी-कांचनमें रमणीयता प्रसिद्ध है। इनकी ओर लगनेके लिये किसीको उपदेश नहीं करना पड़ता। अपने-आप ही इन्द्रियाँ मनको इनकी ओर खींच ले जाती हैं। जगत्के इतिहासको देखनेसे पता लगता है कि संसारके महायुद्धोंमें—भीषण नरसंहारमें 'कामिनी और कांचन' ही प्रधानतया कारण हुए हैं। यहाँ इतनी बात और याद रखनी चाहिये कि पुरुषके लिये जैसे स्त्री आकर्षक है, वैसे ही स्त्रीके लिये पुरुष है। 'कामिनी' शब्दसे यहाँ केवल स्त्री न समझकर यौनसुख प्रदान करनेवाला व्यक्ति समझना चाहिये। स्त्रीके लिये पुरुष—और पुरुषके लिये स्त्री। जैसे पुरुषका चित्त कामिनी-कांचनके लिये छटपटाया करता है, उसी प्रकार स्त्रीका चित्त भी पुरुष और धनके लिये ललचाता रहता है।

परिणाम नहीं जानते, इसलिये पुरुष नारीके सौन्दर्यपर और नारी पुरुषके सौन्दर्यपर मोहित होती है और इसीलिये विलासिताका सामान एकत्र करनेकी अभिलाषासे नर-नारी धनकी ओर आकर्षित होते हैं। जैसे स्त्री या पुरुषके अधिक भोगसे धन, धर्म और जीवनी शक्तिका नाश होता है, वैसे ही धनके लोभमें भी स्वास्थ्य, धर्म-कर्म और जीवनकी बलि देनी पड़ती है। एक बार इनकी प्राप्ति या संयोगमें कुछ सुख-सा दिखायी देता है, परंतु परिणाममें भयानक दुःख और अशान्तिकी प्राप्ति अनिवार्य होती है। जबतक इनका वास्तविक त्याग नहीं हो जाता, तबतक कभी शान्ति नहीं मिलती। शान्तिकी प्राप्ति तो इनके सर्वतोभावेन त्यागसे ही होती है।

परंतु क्या मनुष्यके लिये इनका त्याग सम्भव है? है तो फिर उस त्यागका स्वरूप क्या है और वह त्याग कैसे हो सकता है? संसारमें पुरुष या स्त्री कोई भी ऐसा नहीं है, जो स्त्री-पुरुषके संसर्गसे शून्य हो। माता-पिताके रज-वीर्यसे ही शरीर बनता है। पालन-पोषण भी माता-पिता या बहन-भाई आदिके द्वारा ही होता है। इसी प्रकार सर्वत्यागी संन्यासीको भी कौपीन, फटे कन्थे और भिक्षाकी तो आवश्यकता होती ही है, जो अर्थसाध्य है। ऐसी हालतमें कोई भी स्त्री या धनका सर्वथा त्याग कैसे कर सकता है? इन प्रश्नोंका उत्तर यह है कि पहले त्यागके अर्थको समझना चाहिये। किसी वस्तुका ग्रहण या व्यवहार न करना बाहरी त्याग है और उस वस्तुमें आसक्तिहीन रहना भीतरी त्याग है। अब विचार कीजिये, हम एक चीजका त्याग कर देते हैं परंतु मन-ही-मन उसकी आवश्यकता समझते हैं, उसका अभाव हमारे मनमें खटकता है और उसे प्राप्त करनेकी इच्छा होती है। ऐसी हालतमें उस वस्तुका बाह्य त्याग वास्तविक त्याग नहीं है। त्याग तो असली वही है, जिससे उस वस्तुमें आसक्ति ही न रहे। जिस त्यागमें वस्तुका चिन्तन और आस्वाद मन-ही-मन होता है, वह त्याग वास्तविक नहीं है। अवश्य ही भोगमय जीवनकी अपेक्षा आन्तर त्यागके साधनरूपमें बाह्य त्याग सराहनीय है और आवश्यक भी है, उससे आन्तर त्यागमें सहायता मिलती है और त्यागकी वृत्ति स्वाभाविक होती है; परंतु असली त्याग तो आसक्तिका त्याग ही है। आसक्तिके त्यागसे द्वेष, भय, हर्ष, शोक आदिका भी स्वाभाविक ही त्याग हो जाता है। फिर आगे चलकर तो त्यागके अभिमान और त्यागकी स्मृतिका भी त्याग करना पड़ता है। यही त्यागका स्वरूप है और इस त्यागकी प्राप्ति आसक्तिके दोष और भगवान्के यथार्थ स्वरूपको जाननेसे होती है। यह सत्य है कि स्वरूपसे स्त्री और धनका त्याग सभी

अंशोंमें होना कठिन है तथापि शास्त्र इसीलिये इनके त्यागपर इतना जोर देते हैं कि सर्वथा त्यागकी बात कहनेसे ही मनुष्य कहीं उचित रूपमें इनका व्यवहाररूपमें ग्रहण करेंगे। मनसे तो त्याग होना ही चाहिये। बाह्य त्यागमें पुरुषको चाहिये कि स्त्रीजातिमें देवीकी भावना करे—'**स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु**' और भगवती जानकर उन्हें मातृ-भावसे नमस्कार करे। स्त्रियोंको चाहिये कि पुरुषोंको पिता, भाई या पुत्रके रूपमें देखें। जहाँतक हो सके, किसी भी रूपमें स्त्री-पुरुषका परस्पर ज्यादा मिलना-जुलना लाभदायक नहीं है, परंतु जहाँ आवश्यक हो वहाँ उपर्युक्त भावसे मिले। इसी प्रकार न्यायमार्गसे उतना ही धन उपार्जन करनेकी चेष्टा करे, जिससे गृहस्थका कार्य सीधे-सादेरूपमें चल जाय। इन्द्रियोंको तृप्त करनेके लिये और शरीरके आरामके लिये परमेश्वरको भूलकर, न्यायपथको त्यागकर, दूसरेको धोखा देकर, दूसरेका हक मारकर और असत्यका आश्रय लेकर धन उपार्जन करनेकी चेष्टा कभी न करे।

अवश्य ही भगवान्‌की सृष्टिमें स्त्री और धनकी भी सार्थकता है, उसकी भी आवश्यकता है, परंतु वह होनी चाहिये परमार्थमें सहायकके रूपमें। यह भी नहीं समझना चाहिये कि परस्त्रीका त्याग करना चाहिये, पराये धनके त्यागकी उतनी आवश्यकता नहीं है। जैसे नीच कामवृत्तिका गुलाम होनेसे मनुष्य पशुसे भी अधम, नीच या असुर हो जाता है, वैसे ही अपनेको विलासिता और मौज-शौकके प्रवाहमें बहा देनेवाला अर्थलोभी मनुष्य भी राक्षस हो जाता है। वह अपने शरीरको आराम पहुँचानेके लिये क्या नहीं करता? गरीबोंके—दीनदुखियोंके तप्त अश्रुओंसे अपने भोग-विलासकी प्यास बुझानेवाला और शरीरको आराममें रखनेवाला मनुष्य राक्षस नहीं तो और क्या है? अपने शरीरकी रक्षाके लिये जितना आवश्यक होता है, उतने ही अर्थपर वस्तुतः हमारा अधिकार है। अपने आराम या भोगके लिये उससे अधिक खर्च करना तो भगवान्‌की सम्पत्तिका बेईमानीसे दुरुपयोग करना है। उस धनसे तो गरीब-दुखियोंकी सेवा करनी चाहिये, परंतु इस सेवामें भी अहंकार नहीं आना चाहिये। यही मानना चाहिये कि भगवान्‌की प्रेरणासे प्रेरित होकर भगवान्‌की चीजसे भगवान्‌की सेवा की जाती है। याद रखना चाहिये कि त्याग करना है भोगोंका और आसक्तिका, निष्काम प्रेम और सेवाका नहीं। वास्तविक प्रेम और सेवा त्याग होनेपर ही होती है और यही सेवा भगवत्सेवा कहलाती है। अस्तु!

वास्तवमें कामिनी-कांचनकी क्षणभंगुरता, निःसारता और दुःखरूपताका निश्चय हो जानेपर तो इनमें मन रहेगा ही नहीं। फिर तो इनके त्यागमें एक विलक्षण आनन्द और शान्तिकी प्राप्ति होगी और जिस त्यागमें आनन्द और शान्ति मिलती है, वही यथार्थ त्याग है।

इनसे भी बढ़कर त्याग करनेयोग्य एक चीज और है—वह है कीर्तिकी इच्छा। 'किसी प्रकारसे भी हमारी कीर्ति हो; लोग हमें उत्तम समझें; आज कोई चाहे न जाने, परंतु इतिहासोंमें हमारा नाम उज्ज्वल रहे। हमारा नाम न सही, हमारे वंशका, हमारी जाति या हमारे देशका नाम रहे (यद्यपि ऐसी इच्छा व्यक्तिगत कीर्तिकी इच्छासे उत्तम है; क्योंकि इसमें कुछ त्याग है) और इस सुकीर्तिके लिये स्त्री, पुत्र, धन, मान, प्राण आदि किसी भी वस्तुका त्याग क्यों न करना पड़े।' इस प्रकारकी कीर्तिकामनाका त्याग होना बहुत ही कठिन है और जबतक इसका त्याग नहीं होता, तबतक बड़े-से-बड़े अनुष्ठान, पुण्यकर्म, साधन और तप इसके प्रवाहमें सहज ही बह जाते हैं। मनुष्य अपने जीवनभरका किया-कराया सब कुछ इस कीर्तिपिशाचीके चक्रमें पड़कर नष्ट करता रहता है। वह प्रत्येक काम करनेके पहले ही यह सोचता है कि इसमें मेरी कीर्ति होगी या नहीं, इसलिये उसे अकीर्तिकर कल्याणमय कर्मसे वंचित रहना पड़ता है और आगे चलकर ऐसा कीर्तिकामी पुरुष दम्भाचरणका आश्रय लेकर साधनके पथसे पतित हो जाता है। भगवान्‌की स्मृति छूट जाती है। भगवान्‌के स्थानपर हृदयमें बाहरसे बहुत ही सुन्दर सजी हुई कीर्तिकी कराल मूर्ति आ विराजती है और येन-केन-प्रकारेण उसीकी सेवामें मनुष्यका बहुमूल्य जीवन व्यर्थ चला जाता है! इन सब प्रतिबन्धकोंका मूल है मोहरूप विघ्न और उसके सहायक हैं उसीसे पैदा हुए पूर्वोक्त अहंकार, ममता, कामना और आसक्तिरूप दोष। इनका अपने पुरुषार्थसे सहसा त्याग होना बड़ा कठिन है। भगवत्कृपाके बलसे तो सब कुछ हो सकता है। भगवत्कृपा सबपर होते हुए

भी उसका अनुभव विश्वासी और नामाश्रयी पुरुषोंको होता है। अतएव भगवान्का नाम लेते हुए भगवान्की कृपापर विश्वास करना चाहिये। भगवान्की कृपासे इन चारोंका मुँह विषयोंकी ओरसे घूमकर भगवान्की ओर हो जायगा। भगवान् अपनेमें ही सबका प्रयोग करा लेंगे। फिर तो गोपियोंकी भाँति हम भी कह सकेंगे—

स्याम सरबस तुम हमारे।
तुम्हींसे अभिमानिनी हम, नित सुहागिनि प्राणप्यारे॥
तुम्हींको चाहैं सदा हम, तुम्हींमें मन हैं हमारे।
तुम्हींमें रमतीं निरंतर, तुम्हींसे सुख सब हमारे॥
तुम्हींसे जीवन हमारा, तुम्हीं रक्षक हो हमारे।
तुम्हीं तन-मनमें भरे हो, तुम्हीं हो जीवन हमारे॥
प्राण तुम, प्राणेश तुम, हो प्राणके आधार प्यारे।
ध्यान तुम, ध्याता तुम्हीं हो, ध्येय तुम ही हो हमारे॥
तुम्हीं माता पिता स्वामी बंधु सुत बित तुम हमारे।
तुम्हीं हम हैं, हमीं तुम हौ, खेल हैं ये भेद सारे॥

वाल्मीकिरामायण, सुन्दरकाण्डके सकाम पाठकी विधि

(१)

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
हनूमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः॥
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत्।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः॥
अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम्।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम्॥

(वाल्मीकि० ५। ४२। ३३—३६)

—इन चार श्लोकोंका प्रति सर्गके आदि-अन्तमें सम्पुट देकर पाठ किया जाय।

(२)

रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम।
भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षां देहि श्रियं च ते॥

प्रत्येक श्लोकके आदि-अन्तमें उपर्युक्त मन्त्रका सम्पुट लगाकर प्रतिदिन ३ या ७ सर्गोंका पाठ ६८ दिनोंतक किया जाय। अधिक न किया जा सके तो एक ही सर्गका पाठ करे।

(३)

वादिनः प्रशमं यान्तु विजयो मे सदा भवेत्।
अनष्टद्रव्यता चैव नष्टस्य पुनरागमः॥
नैरुज्यं च शरीरे मे दारपुत्रेषु मे भवेत्।
सर्वाणि कुशलानीह मम सन्तु पदे पदे॥

इन श्लोकोंका उपर्युक्त प्रकारसे प्रति श्लोकके आद्यन्तमें सम्पुट लगाकर ६८ दिनोंतक ३ या ७ सर्गोंका पाठ करे। अधिक न किया जा सके तो एक सर्गका ही पाठ करे।

(४)

आपदामपहर्त्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्॥

इस श्लोकका प्रति श्लोकके आदि-अन्तमें सम्पुट लगाकर ६८ दिनोंतक प्रतिदिन ३ या ७ सर्गोंका पाठ करे। अधिक न किया जा सके तो एक सर्गका ही पाठ करे।

रामचरितमानसके सुन्दरकाण्डके पाठकी विधि

श्रीहनुमान्जीकी मूर्ति सामने सिंहासनपर पधराकर सिन्दूरका चोला चढ़ा दे। फिर विधिवत् पंचोपचारसे पूजन करके पाँच अड़हुलके फूल चढ़ाये और पाँच बेसनके लड्डुओंका भोग लगाये। इस प्रकार नियमपूर्वक ४९ दिनोंतक पूजन करे और भोग लगाये। इस बातका निश्चित नियम अवश्य रहना चाहिये कि जितने अड़हुलके फूल चढ़ाये जायँ, उतने ही लड्डुओंका भोग लगाया जाय। दस फूल हों, तो दस लड्डू भी हों। इस प्रकार ४९ दिनोंतक नित्य ठीक समयपर एकान्त स्थानमें पाठ करे। अनुष्ठानके समय ब्रह्मचर्यका पालन अनिवार्य है। सुन्दरकाण्डके आरम्भ और अन्तमें निम्नलिखित चौपाइयोंका सम्पुट दे—

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेहु बलवाना॥
पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥
कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥

श्रीहनुमान्जीमें विश्वास रखकर इस प्रकार पाठ करनेसे वे प्रसन्न होकर सब मनोरथोंको सिद्ध करते हैं। बिना किसी कामनाके भगवत्-प्रीत्यर्थ संकल्पकर सम्पुट लगाकर अथवा बिना सम्पुट लगाये भी साधारण पाठ करनेकी विधि है।

लक्ष्मीजीकी स्थिरताके उपाय

(मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय)

लक्ष्मीजीका एक नाम चंचला है। संसारमें कहीं भी देखें, कोई घर, कोई समाज, कोई जाति या कोई देश ऐसा नहीं है, जो हर समय धनी बना रहा हो, जिसने निर्धनता कभी न देखी हो। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिलेगा, जिसके यहाँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी लक्ष्मीका निवास रहा हो, जिसके यहाँ दरिद्रता कभी न आयी हो। जहाँपर अथाह धन है, वहाँ भी धीरे-धीरे लक्ष्मीका ह्रास देखा जाता है।

तो लक्ष्मी हैं बड़ी चंचला और व्यक्ति बेचारा लक्ष्मीजीकी चंचलताको रोकनेके लिये क्या नहीं करता! वह बैंकमें धन रखता है, तिजोरीमें मोटे ताले लगाता है। जाने कितने उपाय करता है, पर लक्ष्मी हैं कि जब जाना चाहती हैं, तब किसी-न-किसी मार्गसे निकल जाती हैं। जिस चंचला लक्ष्मीको आजतक कोई रोक न पाया, वही यहाँ भगवान्‌के चरणोंमें अपनी चंचलताको त्यागकर शान्तिसे बैठी हुई हैं। गोस्वामीजी लिखते हैं—'देवता जिनका कृपाकटाक्ष चाहते हैं, परंतु वे उनकी ओर देखती भी नहीं, वे ही लक्ष्मीजी अपने स्वभावको छोड़कर प्रभुके चरणारविन्दमें प्रीति करती हैं।'

जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोइ।
राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोइ॥

(रा०च०मा० ७। २४)

लक्ष्मीजीके सन्दर्भमें गोस्वामीजीने एक बहुत सुन्दर बात कही है। जब वे काव्यकी दृष्टिसे श्रीसीताजीके सौन्दर्यका वर्णन करने लगे तो उन्हें सारी उपमाएँ तुच्छ लगने लगीं। किसीने सुझाव दिया—गोस्वामीजी आप सीताजीकी तुलना लक्ष्मीजीसे क्यों नहीं कर देते? गोस्वामीजी बोले—भाई! लक्ष्मीजीमें अवश्य अनेक गुण हैं, पर उनके साथ दो जबरदस्त दोष जुड़े हुए हैं—

बिष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमासम किमि बैदेही॥

(रा०च०मा० १। २४६। ७)

उन्हें अपने विष और वारुणी—इन दो भाई-बहनोंसे बड़ा प्रेम है। अत: ऐसी लक्ष्मीजीसे जानकीजीकी कैसे उपमा हो सकती है? तात्पर्य यह है कि लक्ष्मीजी जहाँ जाती हैं, इन दो भाई-बहनोंको भी साथ ले जाती हैं। संसारमें देखा भी यही जाता है। विषका अर्थ तो स्पष्ट है, वारुणीका अर्थ होता है—शराब। यदि किसीके पास धन आ गया तो वह मदसे मतवाला और बहुत ही बकवादी हो जाता है। उसकी बुद्धि उग्र हो जाती है तथा उसके हृदयमें बड़ा भारी दम्भ हो जाता है। भला, लक्ष्मीजीका मद किसको टेढ़ा नहीं बना देता और प्रभुता किसे बहरा नहीं कर देती? फिर विषका स्वभाव है मारना। जब व्यक्ति उन्मुक्त होगा, तब चाहे शराब पीकर अपनेको मार डाले अथवा अभिमान-अहंकारसे मतवाला हो अपना सर्वनाश कर ले तो क्या लक्ष्मीजीका परित्याग कर दिया जाय? नहीं, एक उपाय करो। स्त्रियाँ अपने भाई-बहनसे कबतक प्रेम करती हैं? जबतक उनका विवाह नहीं हो जाता। विवाहसे पूर्व ही वे अपने भाई-बहनोंके साथ रहती हैं और विवाह हो जानेपर भाई-बहनोंको छोड़ पतिके पास रहने चली जाती हैं तो जिसके जीवनमें नारायणसे विवाहिता लक्ष्मी होंगी, वे विष और वारुणीको छोड़कर रहेंगी और जहाँ केवल लक्ष्मी होंगी, वहाँ उनके ये दो भाई-बहन भी अवश्य रहेंगे। नारायण ही ऐसे हैं, जिनके चरणोंमें लक्ष्मी अचंचला हो जाती हैं। 'लक्ष्मीजीने चंचला होकर मानो सारे संसारको यह बता दिया कि देखो, इस चंचलताको मात्र मेरी कमीके रूपमें मत देखना, यह तो मैं तुम्हें भगवान्‌की ओर जानेका सन्देश दे रही हूँ। यदि मुझे बुलाओगे तो मैं कभी भी तुम्हें छोड़कर चली जा सकती हूँ। केवल नारायण ही ऐसे हैं, जिनके चरणोंको छोड़कर मैं कभी जाती नहीं। यदि मुझे बुलाओगे तो विष और वारुणीको साथ लेकर आऊँगी, आते तुम्हें दु:ख और कष्ट दूँगी और जाते रुलाती जाऊँगी। अगर मेरा वास्तविक लाभ लेना चाहते हो तो भगवान् नारायणके साथ मुझे बुलाओ।' **[प्रेषक—श्रीअमृतलालजी गुप्ता]**

साधकोंके प्रति—

[अनित्यमें नित्य-बुद्धिका त्याग करें]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

हमलोग बहुत बड़ी भूलमें हैं। यदि उसपर ध्यान देकर उसका सुधार कर लिया जाय तो हम सबको बहुत बड़ा लाभ हो सकता है। वह भूल दो प्रकारसे हो रही है। प्रथम यह कि हम सभी नित्य-प्रति देखते, सुनते और अनुभव करते हैं कि जगत् परिवर्तनशील, विकारवान् और अनित्य है, फिर भी हमने इसे नित्य मान लिया है। दूसरी यह कि हम इस अनित्य संसारसे सुख चाहते हैं। भला, जो प्रतिक्षण स्वयं परिवर्तित हो रहा है, वह दूसरेको सुख पहुँचाये, यह कैसे सम्भव है? सुख तो स्थायी वस्तुसे ही मिल सकता है।

कुछ भी स्थिर नहीं—

हमें सर्वदा यह ध्यान रखना चाहिये कि यह संसार अनित्य है, अतः इससे सुख पानेकी इच्छा करना तो मृगतृष्णाके जलसे पिपासा शान्त करनेके समान असम्भव है। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज कहते हैं—

देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं॥

(रा०च०मा० २।९२।८)

मैं तोहिं अब जान्यो संसार।

देखत ही कमनीय, कछू नाहिंन पुनि किये बिचार।

(विनयपत्रिका १८८)

यह (संसार) परमार्थतः है ही नहीं। यह प्रतिक्षण नष्ट हो रहा है। कोई क्षण ऐसा नहीं है, जिसमें इसे 'स्थिर' कहा जा सके।

हम इस संसारका दृश्य निरपेक्ष भावसे देखें, तभी इसका वास्तविक स्वरूप हृदयंगम कर सकेंगे। इसमें लिप्त होनेसे कुछ प्राप्त होनेवाला नहीं है—यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है। इसका रहस्य जान लेनेपर निश्चय ही हमारा महान् हित होगा।

हम संसारके लिये हैं—

इस अनित्य संसारसे हमें कुछ लेना नहीं है, केवल देना-ही-देना है—ऐसा निश्चय करके लोक-सेवामें लग जाना चाहिये। जिन भोग-पदार्थ और शरीरादिको हम अपना समझते हैं, उन्हें संसारको समर्पित कर देना चाहिये। यह समर्पण यदि सच्चे हृदयसे संसारके लिये होगा तो कर्मयोग, प्रकृतिके लिये होगा तो ज्ञानयोग और भगवान्‌के लिये कर दिया जायगा तो भक्तियोग सिद्ध हो जायगा। इसके विपरीत यदि कहीं अपने लिये मान लिया गया तो जन्म-मरणयोगका सिद्ध हो जाना अनिवार्य है। इन जागतिक वस्तुओंको परमात्माने संसारके लिये प्रदान किया है। ये हमारे लिये नहीं हैं। इन्हें अपनी मानकर हम अपने पास रख भी नहीं सकेंगे। यदि हम दूसरोंके अधिकारकी वस्तुओंसे सुख लेना चाहेंगे तो सुख तो मिलेगा नहीं, उलटे दुःख ही उठाना पड़ेगा। इतना ही नहीं, ये शरीरगत मन, प्राण, बुद्धि, इन्द्रियाँ आदि भी हमारे नहीं हैं तथा न हम इनके लिये हैं—ऐसा दृढ़ निश्चय कर लेनेपर इनकी ममता विनष्ट हो जाती है।

प्रायः मनुष्य ऐसा मानते हैं कि संसारकी रचना हमारे लिये हुई है तथा इसके सारे पदार्थ हमें सुख देनेके लिये ही निर्मित हुए हैं, किंतु यह धारणा बिल्कुल थोथी है। वास्तविकता तो यह है कि ये जागतिक वस्तुएँ प्राणिमात्रकी सेवाके लिये ही निर्मित हुई हैं, अतः बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि वह अपने माने जानेवाले पदार्थोंको संसारका मानकर इन्हें जीव-जगत्‌की सेवामें लगाता रहे।

भगवान् कहते हैं—उन्हीं जीवोंका बार-बार जन्म और लय हो रहा है—

भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते।

(गीता ८।१९)

—क्यों जन्म हो रहा है; क्योंकि नित्यका अंश ('**ममैवांशो जीवलोके**'—गीता १५।७) होते हुए भी ये अनित्य संसारसे, जो उत्पन्न और नष्ट होनेवाला एवं असत्य है, चिपटे हुए हैं और उससे सुखकी आशा करते हैं।

संसार हमारा नहीं, किंतु हम इसकी सेवाके लिये हैं। इससे भी उत्कृष्ट भाव तो यह है कि 'भगवान् भी हमारे लिये नहीं हैं'—ऐसा मानकर 'हम भगवान्‌के लिये

हैं'—ऐसा दृढ़ विश्वास करें। यह भक्तिमार्गकी बहुत महत्त्वपूर्ण बात है। श्रीमद्भागवतमें गोपियोंके अनन्य प्रेमकी महिमा वर्णित है। उन्हें प्रेमकी ध्वजा कहा गया है अर्थात् उनके प्रेमकी स्थिति सर्वोच्च मानी गयी है। वे भगवान् श्रीकृष्णसे कोई सुख नहीं चाहती थीं, अपितु उन्हें सुख पहुँचाती थीं।

सेवाकी पराकाष्ठा—

मनुष्य सेवा करे और सबको सुख पहुँचाये तो उसका स्थान सबसे ऊँचा हो सकता है। लेनेसे मनुष्य नीचा बनता है और देनेसे ऊँचा उठता है। साधक जितना देना चाहेगा, उतना ही ऊँचा उठता चला जायगा। उदाहरणार्थ, देनेवालेका हाथ सदैव ऊपर रहता है और लेनेवालेका नीचे।

कहीं भी रहें, किसी भी स्थितिमें रहें, सबका हित करनेका स्वभाव बना लें। सबका हित चाहनेवाला भगवान्को प्राप्त कर लेता है—'**ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः**।' (गीता १२।४) निर्गुणोपासक और सगुणोपासक—दोनों ही प्राणिमात्रके हितका साधन करते हुए जीवनके चरम लक्ष्यको प्राप्त कर लेते हैं। 'प्रभुको प्राप्त करना' या 'ब्रह्मको प्राप्त करना'—दोनों समानार्थक हैं।

धन कमानेवाले सब लखपति ही हो जायँ, यह किसीके वशकी बात नहीं। यदि किसी प्रकार हो भी गये तो करोड़पति बनना शेष रह जायगा, करोड़पति बन गये तो अरबपति बननेकी इच्छा जगेगी ही। यह इच्छा प्रायः सबमें समानरूपसे विद्यमान है कि धन प्राप्त हो; क्योंकि धन प्रायः सबको अच्छा लगता है। इसी तरह यदि हम मान लें कि भगवान् श्रेष्ठ हैं तो इसमें हमारी क्या हानि है। धनकी इच्छामें तो परतन्त्रता है, सबको इच्छित धन प्राप्त हुआ हो—ऐसा आजतक सुनने-देखनेमें भी नहीं आया, किंतु जिस किसीने भी भगवत्प्राप्तिकी उत्कट इच्छा की है, उसे भगवान् अवश्य प्राप्त हुए हैं। भगवत्प्राप्तिकी इच्छामें परतन्त्रता नहीं है। माता अपने बच्चेको नीरोग बनाये रखे, यह उसके हाथकी बात नहीं; किंतु उसके हितकी भावना तो वह रख ही सकती है। इसी प्रकार यदि हम मानवमात्रके हितकी भावनाको दृढ़तासे धारण कर लें तो निश्चय ही हमें एक दिन भगवान्की प्राप्ति हो जायगी।

हितकी भावना तभी हो सकती है, जब हम अपने सुखका त्याग करेंगे तथा सुख-प्राप्तिकी भावनाका त्याग करना सुगम भी है। इसके लिये बार-बार यही निश्चय करना चाहिये—'किससे सुखकी आशा करें, सभी तो प्रतिक्षण परिवर्तित हो रहे हैं तथा अस्थिर, अनित्य और नाशवान् हैं।' इसलिये अनित्यमें नित्य-बुद्धि और सुख-बुद्धिका त्याग कर देनेसे हम सदाके लिये निहाल हो सकते हैं।

संस्कार-बीज

(गोलोकवासी परम भागवत संत श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज)

बालक बड़ोंका ही अनुकरण करता है।

माँ-बाप यदि जल्दी उठकर प्रभुस्मरण करें तो बालकके जीवनमें भी ऐसे ही संस्कार पड़ेंगे।

हमारी संतानके जीवनमें अच्छे संस्कारोंका सृजन हो, इस दृष्टिसे भी हम सत्कर्म करें। उनके देखते हुए कभी कोई पाप-कर्म न हो जाय—इसका तो विशेष ध्यान रखें।

यदि हम स्वयं तो घरमें बैठे हों और बाहर दरवाजेपर कोई ऐसा व्यक्ति आ जाय, जिसे हम नहीं चाहते, तो उसे बाहर निकालनेके लिये अपने बच्चेके द्वारा 'हम घरमें नहीं हैं' ऐसा सन्देशा भूलकर भी न कहलायें।

झूठ बोलनेके ऐसे संस्कार बालकके जीवनको बर्बाद कर देनेवाले सिद्ध होते हैं और असत्यका बीजारोपण होनेके बाद बड़ी उम्रमें जब वह वृक्षके रूपमें फैलेगा, तब उस समय हमारे पछतावेका कोई अन्त नहीं होगा।

सुन्दरकाण्ड 'सुन्दर' क्यों ?

(डॉ० श्रीकैलाशप्रसादसिंहजी, एम०ए०, पी-एच०डी०)

आदिकवि वाल्मीकिजीकी रामायण और महाकवि तुलसीदासजीके श्रीरामचरितमानसमें सुन्दरकाण्डका नामकरण एक पहेली बना हुआ है। अन्य सभी काण्डोंके नाम तो स्वत: सार्थक सिद्ध हो जाते हैं, किन्तु सुन्दरकाण्डका नामकरण आसानीसे सार्थक सिद्ध नहीं होता। रामायण एवं श्रीरामचरितमानस—दोनोंमें काण्डोंके नाम षष्ठकाण्डको छोड़कर एक समान ही हैं—बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, युद्ध/लंका और उत्तर। जिन महानुभावोंने उत्तरकाण्डमें भी आगे अपनी रचना जोड़ी, उन्होंने इसका नाम लवकुशकाण्ड रखा। षष्ठकाण्डको आदिकविने युद्धकाण्ड और तुलसीदासजीने लंकाकाण्ड कहा। दोनों नाम अत्युपयुक्त हैं। इस काण्डमें श्रीरामचन्द्रजीके रावणसे हुए भीषण महायुद्धका वर्णन है, जिस महायुद्धकी भीषणताका कहीं प्रतिमान नहीं मिलनेसे आदिकविने अनन्वय अलंकारका सहारा लेकर लिखा कि जैसे आकाशकी विस्तीर्णताके तथा महासागरोंकी गहराई आदिके कोई दूसरे उपमान नहीं हैं, वैसे ही राम एवं रावणका महायुद्ध भी उपमानरहित ही है। आकाश आकाश-जैसा होता है, सागर सागर-जैसा ही होता है, इसी तरह राम-रावणका युद्ध भी इन्हीं दोनोंके युद्धकी भाँति हुआ—

गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः।
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव॥

अत: इस काण्डका नाम युद्धकाण्ड सुसंगत ही है और यह महायुद्ध रावणकी लंकामें हुआ, इसलिये इसे लंकाकाण्ड कहना भी उपयुक्त है। शेष काण्डोंके नाम भी सहज सार्थक हैं। बालकाण्डमें भाइयोंसहित श्रीरामचन्द्रजीकी जन्मकथा एवं बाल-लीलाओंका वर्णन है, अयोध्याकाण्डमें राजधानी अयोध्यामें घटित घटनाओंका, अरण्यमें श्रीराम-सीता और लक्ष्मणजीके वननिवास आदिका, किष्किन्धामें वानरराजकी राजधानी किष्किन्धामें बालिवध, सुग्रीवसे मित्रता आदिका और उत्तरकाण्डमें श्रीरामचन्द्रजीके उत्तर यानी बादके चरित, राजकाज आदिका वर्णन है। भवभूतिने 'उत्तररामचरित' लिखा ही है। बीचमें यह पंचमकाण्ड समस्या उत्पन्न करता है। दोनों रामायणोंके महाकवियोंने अपनी कृतियोंमें इस रहस्यका स्पष्ट उद्घाटन नहीं किया है।

विद्वान् टीकाकारोंमेंसे कुछने इस गुत्थीको सुलझानेका प्रयास किया है। त्र्यम्बकराज मखानी रामायणके सुन्दरकाण्डकी व्याख्यामें काव्यसौन्दर्यपर चले गये हैं। प्राय: प्रत्येक श्लोकमें छन्द, अलंकार, रसादि प्रदर्शितकर इस सुन्दरकाण्डको अन्य काण्डोंसे सुन्दरतर प्रमाणित करनेका प्रयास उन्होंने किया है। तब एक समस्याके समाधानमें दूसरी समस्या उठ खड़ी होती है। क्या अन्य काण्डोंमें अलंकार, रस आदि नहीं हैं या कम हैं? क्या अन्य काण्ड काव्यकी दृष्टिसे सुन्दरकाण्डकी अपेक्षा कमतर हैं? ऐसा मानना उचित नहीं लगता।

सुन्दरकाण्डके सुन्दरत्वपर एक अति प्रसिद्ध सूक्ति भी प्रचलित है—

सुन्दरे सुन्दरो रामः सुन्दरे सुन्दरी कथा।
सुन्दरे सुन्दरी सीता सुन्दरे किन्न सुन्दरम्॥

यह भी उपर्युक्तकी तरह ही प्रश्न खड़ा करता है। क्या राम-सीता एवं रामकथाके प्रसंग अन्यत्र सुन्दर नहीं हैं? ये तो सभी काण्डोंमें समान रूपसे सुन्दरताकी पराकाष्ठासे ऊपर हैं और वर्णनातीत हैं। सर्वलक्षणसम्पन्ना सीता, रामः सर्वगुणोपेतः। तो इनकी सुन्दरता सुन्दरकाण्डतक ही क्यों सीमित मानी जाय?

पं० विजयानन्द त्रिपाठीजीने एक दूसरा समाधान सुझाया है—

मनभावन काँचीपुर, हनुमत चरित ललाम।
सुन्दर सानु कथा तथा, ताते सुन्दर नाम॥

इनके विचारसे लंकाके त्रिकूटपर्वतमें तीन प्रमुख शिखर हैं—नील, सुबेल और सुन्दर। नीलशिखरपर लंका अवस्थित है, सुबेल सपाट मैदानी भाग है और सुन्दरपर अशोकवाटिका अवस्थित है। तो त्रिपाठीजीके मतसे सुन्दर नामक शिखरपर स्थित अशोकवाटिकामें सीताजीको रखा गया था, जहाँ हनुमान्जीको इनके दर्शन हुए, अत: काण्डका नाम सुन्दर पड़ा। किंतु पर्वत-शिखरों आदिके कोई प्रमाण नहीं हैं।

कुछ विद्वानोंका कथन है कि नष्ट या खोई हुई वस्तुको पुन: प्राप्त करना ही सुन्दर है—**'नष्टद्रव्यस्य लाभो हि सुन्दरः'** और इसी काण्डमें अपहृत सीताजीके

अन्वेषणमें हनुमान्‌जी सफल हुए हैं। कुछ टीकाकार इस गुत्थीको सुलझानेके लिये सुन्दर शब्दकी व्युत्पत्तिकी ओर जाकर बताते हैं कि यह सरसता प्रदान करता है, इसीलिये सुन्दर नाम दिया गया है—**उन्दी क्लेदने धातुः सु+उन्द्+रक्=सुन्दरम्, सुष्ठु उनत्ति आर्द्रीकरोति चित्तमिति, शैत्यं सरसतां च प्रयच्छति इति सुन्दरम्, प्रयोगप्रवाहाद् दीर्घाभावः।**

एक अन्य समाधानको देखा जाय। हनुमान्‌जी महाराज रामायणमहामालाके महार्घ रत्न हैं और इनकी बहुविध स्तुतियोंमें कहीं-कहीं इनके पर्यायके रूपमें 'सुन्दर' शब्द आया है, यथा—श्रीहनुमत्सहस्रनामजपमें इनका ९२५वाँ नमस्कारमन्त्र '**स्वरसुन्दराय नमः**' उल्लिखित है। इसी प्रकार श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम् के ११४वें श्लोकमें इनका एक नाम स्वरसुन्दर भी है—

सर्ववश्यकरः शक्तिरनन्तोऽनन्तमङ्गलः।
अष्टमूर्तिधरो नेता विरूपः स्वरसुन्दरः॥

यह समाधान भी समीचीन नहीं लगता। उपर्युक्त दोनों नामजप एवं स्तोत्रोंमें तो हनुमान्‌जीको राम, कृष्ण, शिव, वराह आदि अनेक प्रकारके नामोंसे नमस्कार किया गया है। ऐसा नहीं है कि ये सभी नाम हनुमान्‌जीके पर्यायवाची हैं। वे तो सकलगुणनिधान थे ही, सर्वोत्तम स्वरसे भगवन्नामकीर्तन भी करते थे। तो इनकी सुन्दर स्वरलहरीपर इस काण्डका नाम नहीं लगता है। एक अन्य समाधानसे सुन्दर अक्षरोंमें रामनामांकित सुन्दरवर्णवाले हनुमान्‌जीके द्वारा दस मासे सोनेकी मुद्रिका सीताजीके पास प्रेषित किये जानेको सुन्दरकाण्डके नामकी सार्थकता सिद्ध करनेका भी प्रयास किया गया है—

सुवर्णस्य सुवर्णस्य सुवर्णस्य च मैथिलीम्।
प्रेषितं रामचन्द्रेण सुवर्णस्याङ्गुलीयकम्॥

—पर ये भी सभी समाधान बालबहलाऊ प्रतीत होते हैं। दोनों महाकवियोंके मानसमें इस नामकरणके पीछे कोई गहरा कारण होना चाहिये, जिसे महाकवियोंने अपने काव्यग्रन्थोंमें स्पष्ट नहीं किया है। सुधी पाठकोंपर छोड़ दिया है। तुलसीदासजीने तो काण्डोंके नामकरणमें आदिकविका अनुसरण किया है।

अब दूसरी दृष्टिसे विचार किया जाय। यह सुन्दरकाण्ड दोनों रामायणोंका पंचम काण्ड है और पंचमका एक अर्थ सुन्दर, रुचिर भी होता है। संस्कृतके प्रख्यात अमरकोष भानुजिदीक्षितकृत रामाश्रमी टीकामें स्पष्ट उद्धरण दिया गया है—'**पञ्चमो रुचिरे दक्षे**' (१।७।१) यानी पंचम शब्दका प्रयोग रुचिर एवं दक्षके अर्थोंमें होता है और रुचिर एवं सुन्दर—दोनों पर्यायवाची शब्द हैं—

सुन्दरं रुचिरं चारु सुषमं साधु शोभनम्।
कान्तं मनोरमं रुच्यं मनोज्ञं मंजु मंजुलम्॥

(अमर० ३।१।५२)

संस्कृतके प्रामाणिक शब्दकोष शब्दार्थकौतुभमें भी पंचमका अर्थ रुचिर और सुन्दर किया गया है। सप्तस्वरोंमें कोकिलाकी काकलीका मधुर पंचम स्वर विख्यात है ही। तो इस पंचमके पर्यायके रूपमें सुन्दर शब्दका प्रयोग आदिकविके कालमें इतना प्रचलित रहा होगा कि उन्होंने अपनी काव्यकृतिके पंचम काण्डका नाम सुन्दर रखनेमें किसी व्याख्याकी आवश्यकता नहीं समझी और सबसे बड़ी बात तो यह है कि कवियोंका संसार निराला होता है। वे अभिधाकी उपेक्षाकर लक्षणा एवं व्यंजनापर अपनेको न्योछावर करनेमें धन्य समझते हैं। काव्यालोचक एवं सुधी पाठक भी व्यंजनाप्रधान एवं ध्वन्यात्मक काव्यको सर्व-प्रधानता प्रदान करते हैं। काव्यको '**वैदग्ध्यभङ्गीभणिति**' कहा ही जाता है, आनन्दवर्धनाचार्यकी तरह अधिकतर विद्वान् ध्वनिको काव्यकी आत्मा मानते हैं—'**काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति।**' उन्हें सूखी लकड़ीको '**नीरसतरु**' कहनेमें आनन्द मिलता है, '**शुष्कं काष्ठं**' कहनेसे वे परहेज करते हैं। प्रसिद्धि है कि महाकवि बाणभट्ट अपनी अनुपम कृति '**कादम्बरी**' की समाप्तिके पूर्व रोगग्रस्त हो जीवनसे उदास हो गये थे। उनकी बलवती अभिलाषा थी कि उनके दो पुत्रोंमेंसे कोई कादम्बरीको उसी शैलीमें पूर्ण कर दे, जिस अनुपम शैलीमें वे स्वयं रचना कर रहे थे। सर्वप्रथम उन्होंने अपने ज्योतिषी पुत्रसे 'आगे सूखी लकड़ी रखी है' का अनुवाद करनेको कहा। पुत्र गणितका विद्यार्थी था, झटसे बोल उठा—'**शुष्कं काष्ठं तिष्ठत्यग्रे।**' इसपर बाणभट्टको घोर निराशा हुई। तब दूसरे पुत्रसे जो साहित्यिक अभिरुचिका था, यही प्रश्न किया गया, जिसने '**नीरसतरुरिह विलसति पुरतः**' कहकर पिताश्रीको आशान्वित किया कि कादम्बरी महाकविकी मूल शैलीमें उनके दिवंगत होनेपर भी पूर्ण हो सकती है। अतः यहाँ भी रूखा-सूखा गणितका 'पंचम' नहीं कहकर इसका काव्यमय पर्याय 'सुन्दर' कह दिया।

अब यहाँ भी कुछ महानुभाव आक्षेप लगा सकते हैं

कि जब पंचमकाण्डका नाम संख्यावाचक पंचमके पर्यायरूप 'सुन्दर' लिखा गया तब अन्य काण्डोंके नाम भी संख्यावाचक ही क्यों न रखे गये? बालकाण्डको प्रथम, अयोध्याको द्वितीय आदि कहते। तो इस शंकाका भी सरल समाधान है। अपने विशाल वाङ्मयमें अनेक उदाहरण हैं, जहाँ ऐसी ही परिपाटी प्राप्त होती है, यथा—अवस्थाएँ चार बतायी गयी हैं—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय। तो यहाँ प्रथम तीन अवस्थाओंको तो नाम दिये गये हैं, चौथी अवस्थाको कोई नाम नहीं देकर केवल चौथी अवस्था कह दिया गया। तुरीयका अर्थ चतुर्थ ही होता है।

एक दूसरा उदाहरण भी देखा जाय। सप्त स्वरोंमें छः स्वरोंको ही अलग-अलग नाम दिये गये हैं—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, धैवत एवं निषाद, किंतु बेचारे पाँचवें स्वरको नाम नहीं मिला। स्वरोंमें पाँचवाँ होनेके कारण इसे पंचम कह दिया गया और सच पूछिये तो चतुर्थ स्वरको भी कोई नाम नहीं मिला, यह मध्यम है, तीन इसके पूर्व हैं और तीन स्वर इसके बाद। अतः इसे मध्यम कह दिया गया। हाथकी पाँच उँगलियोंमें चारके नाम हैं, बीचवालीका कोई नाम नहीं, इसे मध्यमा कहकर सन्तोष किया गया, चूँकि यह मध्यमें है। यह परम्परा देशमें अब भी चल रही है। सभी संतानोंके नाम दिये गये और पाँचवीको पाँचू कह दिया, जो उसका नाम ही हो गया। शायद उसी परम्पराके अन्तर्गत चौबीस परगनोंके नामपर ही चौबीस परगना जिला है और शायद छत्तीस गढ़ोंके नामपर छत्तीसगढ़ राज्य। इस प्रकारके अनेक उदाहरण हैं, बहुसंख्यकोंके नाम दिये और एकाधके लिये उसका क्रमांक ही उसका नाम हो गया। रामायणमें भी यही किया गया है, सभी काण्डोंके नाम और पाँचवें काण्डका नाम उसकी क्रमसंख्याका ललित काव्यमय पर्याय 'सुन्दर'।

सच पूछा जाय तो यही ठीक समाधान है, जो वस्तुतः मेरा अपना नहीं है। मैं इस विषयपर एक दूसरा समाधान लिखने ही जा रहा था कि मेरे मनमें स्वतः स्फूर्त हुआ कि यह सुझाव भी बाल-बहलाऊ ही लगता है। सामने हनुमान्‌जी महाराजके कई चित्र टँगे थे। मैंने उनकी ओर कातर दृष्टिसे देखा और प्रार्थना की—महाराज! आप रामायण-महामालाके सर्वश्रेष्ठ रत्न हैं, क्या सुन्दरकाण्डके नामकरणको संसारके लिये रहस्य ही रहने देंगे? ठीक इसी समय मेरे मानसमें पंचमके पर्यायके रूपमें सुन्दर शब्द उभरा। पुष्टिके लिये अमरकोष, शब्दार्थकौस्तुभ आदि शब्दकोषोंका अवलोकन किया, जिनसे इन बातोंका समर्थन मिला।

इस छोटेसे काण्डमें सुन्दर एवं सुन्दरता वाचक शब्दोंका इतनी बार प्रयोग हुआ है कि मैं पहले इसीको समाधान समझता था, बादमें हिचक गया। इस काण्डमें सुन्दर एवं इससे मिलते-जुलते पर्यायोंके प्रयोग देखे जा सकते हैं। सबसे पहले सुन्दर, सुहावने, शोभा जैसे शब्दोंको ही लिया जाय—

जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए॥
सिंधु तीर एक भूधर सुंदर। कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर॥
तहाँ जाइ देखी बन सोभा। गुंजत चंचरीक मधु लोभा॥
नाना तरु फल फूल सुहाए। खग मृग बृंद देखि मन भाए॥
'कनक कोट बिचित्र मनि कृत सुंदरायतना घना।'
'बन बाग उपबन बाटिका सर कूप बापीं सोहहीं।'
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥
रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराइ॥
स्याम सरोज दाम सम सुंदर।
तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर॥
सीता मन बिचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना॥
बोला कपि मृदु बचन बिनीता॥
सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुंदर फल रूखा॥
'तात मधुर फल खाहु॥'
'राम नाम बिनु गिरा न सोहा।'
'अंगद संमत मधु फल खाए।'
'पवन तनय के चरित सुहाए॥'
'लागे कहन कथा अति सुंदर॥'
'सगुन भए सुंदर सुभ नाना॥'
'सखा कही तुम्ह नीकि उपाई।'
'सहज कृपन सन सुंदर नीती॥'

सुन्दरकाण्डमें सुन्दर, सुहावने, शोभा आदि शब्दोंसे मिलते-जुलते भी इतने शब्द एवं परिस्थितियाँ वर्णित हैं कि उन सबके यहाँ उल्लेखसे आलेख बड़ा हो जायगा। आदिकविके सुन्दरकाण्डकी भी यही स्थिति है। अतः सुधी पाठक चाहें तो स्वयं अवलोकन कर सकते हैं, जिससे जिज्ञासा-पूर्ति भी होगी और पुण्यलाभ भी।

सन्तप्रवर श्रीभरतजी—श्रीहनुमान्‌जीकी दृष्टिमें

(श्रीजगदीशप्रसादजी गुप्त)

लंकाके रणक्षेत्रमें मेघनादके शक्ति-प्रहारसे श्रीलक्ष्मणजी मूर्च्छित हो गये। लंकाके सुषेण वैद्यकी आज्ञासे श्रीहनुमान्‌जी द्रोणाचल पर्वतपरसे विशल्यकर्णी औषधि (संजीवनी बूटी) लेने चल दिये। वे वहाँ पहुँचकर अमुक औषधिको पहचान नहीं पाये और उन्हें पूरे पर्वतको उखाड़कर लेकर चलना पड़ा। जब वे रात्रिके समय आकाशमार्गसे अयोध्यानगरीके ऊपरसे पर्वत लिये जा रहे थे, भरतजीने उन्हें एक अति विशाल

निशाचर समझकर बिना फलका बाण मारा। बाण लगते ही हनुमान्‌जी 'राम, राम, रघुपति' का उच्चारण करते हुए मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े—

देखा भरत बिसाल अति निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ चाप श्रवन लगि तानि॥
परेउ मुरुछि महि लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक॥

(रा०च०मा० ६।५८, ५९।१)

एक बार प्रभु श्रीरामने उक्त घटनाके सन्दर्भमें भैया भरतको कहा था—हे भरत! तुम्हारी भुजाकी क्षमता धन्य है। तुम्हारे बिना फलके बाणसे हनुमान्‌जी-जैसे योद्धा पृथ्वीपर गिर पड़े, जिसे परास्त करनेकी क्षमता ब्रह्माण्डके किसी योद्धामें नहीं है। यह सुनकर भरतजी व्यथित होकर प्रभुके श्रीचरणोंको पकड़कर कहने लगे—प्रभो! उस घटनाकी स्मृतिसे मुझे ग्लानि, हीनभावना तथा लज्जा आती है। चित्रकूटमें आपने न तो अयोध्या लौटनेका मेरा प्रस्ताव स्वीकार किया और न ही वनमें मुझे साथ रहनेकी अनुमति दी। अयोध्यामें हनुमान्‌जीके मूर्च्छित होनेपर वह रहस्य नहीं रहा कि आपने मेरा परित्याग क्यों किया? प्रभो! आपने अपना छोटा भाई बनाकर मेरे ऊपर अपार करुणा की है, किंतु मेरी करनी रावण तथा मेघनादकी तरह है। सुनकर प्रभु श्रीराम चौंके— भरत! तुम कैसी बातें करते हो? मेघनाद और रावणसे तुम्हारी क्या तुलना? श्रीभरतजी कहने लगे—प्रभो! मेरा कहना उचित ही है। मेघनादने भाई लक्ष्मणजीको शक्तिपातसे मूर्च्छित किया था और मैंने भी लक्ष्मणके प्राणोंकी रक्षा करनेके लिये औषधि ले जानेवाले हनुमान्‌जीको मूर्च्छित किया। मैं मेघनादसे भी अधिक अपराधी हूँ। रावणने कालनेमि राक्षस भेजकर औषधि लेने जानेवाले हनुमान्‌जीका रास्ता रुकवानेकी चेष्टा की थी, जिससे औषधि विलम्बसे पहुँचे। उसी प्रकार मैंने भी हनुमान्‌जीको बाण मारकर, उन्हें गिराकर विलम्ब पहुँचाया। प्रभो! आपने मेरा परित्यागकर ठीक पहचाना। पूज्यपाद गोस्वामी तुलसीदासजीने श्रीरामचरित-मानसमें भरतजीके ये ही उद्गार प्रकट किये—

कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहिं लीन्हा॥

(रा०च०मा० ७।१।४)

श्रीभरतजीके ऐसे उद्गार सुनकर प्रभु श्रीराम हनुमान्‌जीसे पूछने लगे—हनुमन्त! भैया भरत ऐसा क्यों कह रहे हैं? क्या कहना चाहते हैं? श्रीहनुमान्‌जी प्रभुके श्रीचरणोंको पकड़कर कहने लगे—भगवन्! भैया भरत सन्त हैं, इनकी सन्तप्रकृति है और आपके परम भक्त हैं। मैं तो यही कहूँगा कि इनके सभी कार्य आपसे बढ़कर हैं, अधिक महान् है। जैसे—

१-प्रभो! आपके बाण बड़े चमत्कारी हैं, दिव्य हैं तथा अमोघ हैं, परंतु भरतजीके पास ऐसे दो बाण हैं, जो आपके पास भी नहीं हैं। भरतजीमें दिव्य दृष्टि थी

कि उन्होंने मेरे मनमें आनेवाला भ्रम तथा अभिमान जानकर उनपर अपने एक बाणसे प्रहार किया था।

२-भैया लक्ष्मणजीकी मूर्च्छा दूर करनेके लिये लंकासे वैद्य आया, द्रोणाचलसे औषधि आयी। जब मैं अयोध्यामें मूर्च्छित होकर गिर पड़ा, तब भरतजीने अयोध्यासे वैद्य बुलाकर मेरी मूर्च्छा दूर नहीं करायी। उन्होंने तो स्वयं दो ही क्षणमें मेरी मूर्च्छा दूर कर दी। उन्होंने कहा था—यदि मन, वचन और शरीरसे प्रभुके श्रीचरणोंमें मेरा निष्कपट प्रेम हो, उनकी मेरे ऊपर कृपा हो तो यह वानर श्रम तथा शूलसे रहित हो जाय। प्रभो! आपकी भक्तिके प्रति भरतजीका कितना अधिक विश्वास था कि उनके वचनोंको सुनकर मेरी मूर्च्छा दूर हो गयी, मैं बैठ गया।

३-श्रीभरतजीने मुझसे कहा था—तुम पर्वतसहित मेरे बाणपर चढ़ जाओ, मैं तुम्हें कृपाधाम प्रभु श्रीरामके पास पहुँचा दूँ। प्रभो! मुझे तो भार उठानेका कार्य दिया गया था, परंतु आपकी कृपासे मेरा भार उठाने मुझे ऐसे सन्त-भक्त भरतजी मिले।

४-प्रभो! आपके पास अग्नि, जल, पहाड़ आदि बरसानेवाले तथा सिर काटनेवाले बाण हैं। भरतजीके बाण-जैसा, जो ईश्वरके पास पहुँचाता-मिलाता है, आपके पास भी नहीं है। उनका एक बाण अभिमान मिटानेवाला तथा दूसरा ईश्वरसे मिलानेवाला है।

५-प्रभो! यह सत्य है कि आपके बाण लगनेसे राक्षस आपमें विलीन हो गये। आपका बाण आपसे मिलाता तो है, परंतु मरनेके बाद। भरतजीका बाण जीतेजी मिलाता है।

६-आपने माता कैकेयीसे प्राप्त चौदह वर्षका वनवास तपस्वी बनकर बिताया था, जबकि आपके भक्त भरतजीने सभी सुख-सुविधाएँ त्यागकर अयोध्यासे बाहर नन्दग्राममें पर्णकुटी बनाकर पूरे चौदह वर्ष तपस्वी जीवन बिताया।

श्रीभरतजीके प्रति श्रीहनुमान्‌जीके भावमय प्रेमोद्‌गार सुनकर प्रभु श्रीराम अति प्रसन्न हुए और कहने लगे— हनुमन्त! तुम्हारा कहना यथार्थ है। भरतजीके समान पवित्र और उत्तम भाई संसारमें नहीं है—***'सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥'*** (रा०च०मा० २।२३२।४) पिता चक्रवर्ती महाराज दशरथके हम दोनों भाई उनकी दो आँखें थीं—***'मोरें भरतु रामु दुइ आँखी।'*** (रा०च०मा० २।३१।६)। गुरुदेव बता रहे थे कि चित्रकूटयात्रामें उनके आश्रममें भैया भरतको मिलनेवाले जो भी भील, किरात आदि वनवासी तथा वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, संन्यासी और विरक्त हमारे कुशलपूर्वक देखनेके समाचार कहते, उनको वे हमारे समान ही प्रिय मानते—***'जे जन कहहिं कुसल हम देखे। ते प्रिय राम लखन सम लेखे॥'*** (रा०च०मा० २।२२४।७)। चित्रकूटयात्रामें मुनिश्रेष्ठ भरद्वाजजीके आश्रममें आये भरतको उन्होंने कहा था कि उन्हें हमारे दर्शनके फलका महान् फल भरतजीके दर्शनके रूप मिला—***'तेहि फलु कर फल दरस तुम्हारा।'*** (रा०च०मा० २।२१०।५) कौसल्या माता उन्हें सदैव कुलका दीपक जानती थी, महाराजने उनसे बारम्बार यही कहा था—***'जानउँ सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा॥'*** (रा०च०मा० २।२८३।५)

श्रीहनुमान्‌जीको कही गयी भ्रातृ-स्नेहकी वाणी सुनकर भरतजी प्रभुके श्रीचरण पकड़ उनके मुखकी ओर देखने लगे। प्रभुने उन्हें उठाकर हृदयसे लगाया—भैया भरत! यह कोई स्तुति नहीं, अपितु सत्य है। अयोध्याके लोगोंके मनमें दुर्गुण मेरे रहते हुए आ गये थे, मन्थराकी लोभवृत्ति नहीं मिटी, माता कैकेयीकी बुद्धिमें मलिनता आयी तथा महाराज दशरथके मनमें काम आया। भरत! तुम्हारी कृपा होते ही समस्त अयोध्यावासी मेरे पास चित्रकूट पहुँच गये। उस समय मैंने जो कहा था, वह शाश्वत सत्य है। हे भरत! तुम्हारा नामस्मरण करते ही सब पाप-प्रपंच और समस्त अमंगलोंके समूह मिट जायँगे तथा इस लोकमें सुन्दर यश तथा परलोकमें सुख प्राप्त होगा—

मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार।
लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार॥

(रा०च०मा० २।२६३)

दीर्घायुष्य एवं मोक्षके हेतुभूत भगवान् शंकरकी आराधना

प्राचीन कालमें एक राजा थे, जिनका नाम था इन्द्रद्युम्न। वे बड़े दानी, धर्मज्ञ और सामर्थ्यशाली थे। धनार्थियोंको वे सहस्र स्वर्णमुद्राओंसे कम दान नहीं देते थे। उनके राज्यमें सभी एकादशीके दिन उपवास करते थे। गंगाकी वालुका, वर्षाकी धारा और आकाशके तारे कदाचित् गिने जा सकते हैं; पर इन्द्रद्युम्नके पुण्योंकी गणना नहीं हो सकती। इन पुण्योंके प्रतापसे वे सशरीर ब्रह्मलोक चले गये। सौ कल्प बीत जानेपर ब्रह्माजीने उनसे कहा—'राजन्! स्वर्गसाधनमें केवल पुण्य ही कारण नहीं है, अपितु त्रैलोक्यविस्तृत निष्कलंक यश भी अपेक्षित होता है। इधर चिरकालसे तुम्हारा यश क्षीण हो रहा है, उसे पुनः उज्ज्वल करनेके लिये तुम वसुधातलपर जाओ।' ब्रह्माजीके ये शब्द समाप्त भी न हो पाये थे कि राजा इन्द्रद्युम्नने अपनेको पृथ्वीपर पाया। वे अपने निवासस्थल काम्पिल्य नगरमें गये और वहाँके निवासियोंसे अपने सम्बन्धमें पूछताछ करने लगे। उन्होंने कहा—'हमलोग तो उनके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानते, आप किसी वृद्ध चिरायुसे पूछ सकते हैं। सुनते हैं, नैमिषारण्यमें सप्तकल्पान्तजीवी मार्कण्डेयमुनि रहते हैं, कृपया आप उन्हींसे इस प्राचीन बातका पता लगाइये।'

जब राजाने मार्कण्डेयजीसे प्रणाम करके पूछा कि 'मुने! क्या आप इन्द्रद्युम्न राजाको जानते हैं?' तब उन्होंने कहा, 'नहीं, मैं तो नहीं जानता, पर मेरा मित्र नाड़ीजंघ बक शायद इसे जानता हो; इसलिये चलो, उससे पूछा जाय।' नाड़ीजंघने अपनी बड़ी विस्तृत कथा सुनायी और साथ ही अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए अपनेसे भी अति दीर्घायु प्राकारकर्म उलूकके पास चलनेकी सम्मति दी। पर इसी प्रकार सभी अपनेको असमर्थ बतलाते हुए चिरायु गृध्रराज और मानसरोवरमें रहनेवाले कच्छप मन्थरके पास पहुँचे। मन्थरने इन्द्रद्युम्नको देखते ही पहचान लिया और कहा कि 'आपलोगोंमें जो यह पाँचवाँ राजा इन्द्रद्युम्न है, इसे देखकर मुझे बड़ा भय लगता है; क्योंकि इसीके यज्ञमें मेरी पीठ पृथ्वीकी उष्णतासे जल गयी थी।' अब राजाकी कीर्ति तो प्रतिष्ठित हो गयी, पर उसने क्षयिष्णु स्वर्गमें जाना ठीक न समझा और मोक्ष-साधनाकी जिज्ञासा की। एतदर्थ मन्थरने लोमशजीके पास चलना श्रेयस्कर बतलाया। लोमशजीके पास पहुँचकर यथाविधि प्रणामादि करनेके पश्चात् मन्थरने निवेदन किया कि इन्द्रद्युम्न कुछ प्रश्न करना चाहते हैं।

महर्षि लोमशकी आज्ञा लेनेके पश्चात् इन्द्रद्युम्नने कहा—'महाराज! मेरा प्रथम प्रश्न तो यह है कि आप कभी कुटिया न बनाकर शीत, आतप तथा वृष्टिसे बचनेके लिये केवल एक मुट्ठी तृण ही क्यों लिये रहते हैं?' मुनिने कहा, 'राजन्! एक दिन मरना अवश्य है; फिर शरीरका निश्चित नाश जानते हुए भी हम घर किसके लिये बनायें? यौवन, धन तथा जीवन—ये सभी चले जानेवाले हैं। ऐसी दशामें 'दान' ही सर्वोत्तम भवन है।'

इन्द्रद्युम्नने पूछा, 'मुने! यह आयु आपको दानके परिणाममें मिली है अथवा तपस्याके प्रभावसे, मैं यह जानना चाहता हूँ।' लोमशजीने कहा, 'राजन्! मैं पूर्वकालमें एक दरिद्र शूद्र था। एक दिन दोपहरके समय जलके भीतर मैंने एक बहुत बड़ा शिवलिंग देखा। भूखसे मेरे प्राण सूखे जा रहे थे। उस जलाशयमें स्नान करके मैंने कमलके सुन्दर फूलोंसे उस शिवलिंगका पूजन किया और पुनः मैं आगे चल दिया। क्षुधातुर होनेके कारण मार्गमें ही मेरी मृत्यु हो गयी। दूसरे जन्ममें मैं ब्राह्मणके घरमें उत्पन्न हुआ। शिवपूजाके फलस्वरूप मुझे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण रहने लगा। मैंने जान-बूझकर मूकता धारण कर ली। पितादिकी मृत्यु हो जानेपर सम्बन्धियोंने मुझे निरा गूँगा जानकर सर्वथा त्याग दिया। अब मैं रात-दिन भगवान् शंकरकी आराधना करने लगा। प्रभु चन्द्रशेखरने मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दिया और मुझे इतनी दीर्घ आयु दी।'

यह जानकर इन्द्रद्युम्न, बक, कच्छप, गीध और उलूकने भी लोमशजीसे शिवदीक्षा ली और तप करके मोक्ष प्राप्त किया। [**स्कन्दपुराण**]

प्रेरक-कथा—

गंगाघाट

(डॉ० श्रीमती राधिकाजी लढ़ा)

अधेड़ उम्रकी गंगा रामपुर गाँवमें रहती हुई खेतोंमें काम करती थी। अकेली, तन्हा, निराधार। उसकी छोटी-सी कुटियामें थोड़ेसे बर्तन और कपड़ोंके अलावा कुछ न था। सुबह स्नान आदिसे निवृत्त होकर चार रोटी और तरकारी बना लेती। पोटलीमें बाँध चल पड़ती कामके लिये। शामको थकी-हारी आती और कुछ खाया न खाया, खटियापर पड़ जाती। कभी झोपड़ीको ताला लगानेकी जरूरत नहीं पड़ी। बस, यही थी जिन्दगी। कभी-कभी मन दु:खसे भर जाता, उदासी छा जाती कि यह कैसी जिन्दगी है उसकी?

एक दिन शामको जब वह कामसे लौटी और चूल्हा जलानेकी तैयारी कर ही रही थी कि देखा कुटियाके बाहर एक बूढ़ा भिखारी खड़ा है। वह कुछ कहे उससे पूर्व ही गंगाने कहा—'देखो, मेरे यहाँ अभी चावल पके भी नहीं हैं। न और ही कुछ देनेको है। तुम अभी तो जाओ, किसी और दिन आना।' भिखारीने कहा—'बेटी! मुझे तुम्हारे चावल नहीं चाहिये। मुझे तो केवल एक बाल्टी गुनगुना पानी चाहिये। मेरे शरीरमें खुजली है। डॉक्टरने कहा है कि गर्म पानीसे नहाते रहनेसे खुजली होना धीरे-धीरे बन्द हो जायगी। मैं बूढ़ा हूँ, नीचेसे पानी लानेकी ताकत नहीं है। मुझे लगा, तुम मेरी बेटी-जैसी हो, यह सोचकर तुम्हारे पास आ गया था।'

गंगाने कहा—'यह सब तो ठीक है किंतु तुम्हें पता है कि मुझे पानी कितनी दूरसे लाना पड़ता है? नीचे··· आधा किलोमीटर दूरसे बाल्टी उठाकर पहाड़ीपर लाना पड़ता है। फिर, शाम हो रही है और मैं बहुत थकी हूँ। मैं यह सब नहीं कर सकती।' भिखारी यह कहते हुए कि तुम न देना चाहो तो कोई बात नहीं, वह मुड़ गया। उसको जाते देख रही थी गंगा। सोचने लगी—'आजतक मुझे स्नेहसे बेटी कहकर किसीने नहीं पुकारा। फिर··· एक बाल्टी पानी ही तो माँगा था और मेरा चूल्हा तो जल ही रहा है।'

एक पल ऐसा सोचते ही, उसने बाबाको आवाज दी और पानी गर्म करके एक बाल्टीमें भर उसे दे दिया। भिखारीने बाल्टी एक ओर ले जाकर मल-मलकर नहा लिया और गंगाको आशीर्वाद देकर चला गया।

दूसरे दिन शामको मजदूरीसे लौटी तो देखा, वह बूढ़ा वहीं कुटियाके पासवाली शिलापर बैठा था। मनमें विचार आया—'ये भिखारी ऐसे ही होते हैं चिपकू!' पास आयी तो बोली—'आप फिर आ गये?' उसने कहा—'बेटी! कल मैं नहाकर गया तो बहुत अच्छी नींद आयी। यदि आज भी पानी दे दो तो नहा लूँ।' गंगा चिढ़कर बोली—'मैं तो उतना ही पानी लायी हूँ, जितना मुझे चाहिये। अभी रातमें कहाँ जाऊँगी ठेठ नीचे? लो, फिर भी आज दे देती हूँ।' अत: पानी गर्म किया, भिखारी बाल्टी ले गया, नहाया, आशिष देते हुए चला गया। गंगा कुढ़ते हुए भी न जाने क्यों अन्दरसे खुशी महसूस कर रही थी।

तीसरे दिन सुबह अपने लिये पानी लेने गयी तो एक बाल्टी पानी ज्यादा लेकर आ गयी। न जाने क्यों, उसे लग रहा था कि वे बाबा अवश्य आयेंगे। शामको वह आ भी गया। गंगाने चुपचाप पानी गर्म करके दे दिया। नहाकर उसने कहा—'बेटी! इस पानीसे नहाकर आधी बीमारी मिट गयी। डॉक्टरने कहा है, आठ दिन नहा लूँगा तो मैं पूरी तरह ठीक हो जाऊँगा।' न चाहते हुए भी यह क्रम चलता रहा। आठ दिन पूरे हो गये। गंगा निश्चिन्त बैठी थी कि देखा—वह भिखारी तो एक और साथीको साथ लेकर आ रहा है। वह सहम-सी गयी। आँखें प्रश्नचिह्न बन गयीं। भिखारीने बताया कि उसके साथ आनेवाले इस बूढ़ेको भी वैसी ही तकलीफ है अत: यदि तुम थोड़ी दया करके मात्र एक बाल्टी पानी भी दे दो तो दोनों उससे नहा लेंगे।

गंगा गुस्सेसे बोली—'यहाँ क्या घाट है, जो आप औरोंको भी लेकर आ गये? मैं यह सब नहीं कर सकती।' बाबा गिड़गिड़ाया—'बेटी! मैं तुम्हारे लिये जंगलसे लकड़ियाँ आदि ला दूँगा। बस, मैं पानी नहीं ला सकता। यदि तुम यह उपकार कर दो तो तुम्हारा भला होगा।' गंगाका दिल पिघल गया। उसने चूल्हा जलाकर डेढ़ बाल्टी पानी गर्म करके दे दिया। दोनोंने एक-एक बूँदका उपयोग करते हुए मल-मलकर नहा लिया और प्रसन्न होकर लौट गये। आठ दिन यह क्रम चला। आठ दिनके बाद देखा तो तीन व्यक्ति आ गये। गंगाने कुछ भी टिप्पणी न करते हुए तीनोंके लिये पानी दे दिया।

दूसरे दिन जब वह खेत पहुँची तो उसको चिन्तित देख सखी जमनाने पूछ लिया—'क्या बात है? क्यों चिन्तित हो? अबकी बार तो फसल भी अच्छी हुई है। हमारे लिये पूरा काम है और रेट भी ठीक ही दिया जा रहा है। बताओ, तुम्हें क्या चिन्ता सता रही है?' गंगाने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। पूछा—'अब तू ही बता मैं तीन-तीन व्यक्तियोंके लिये पानी भर-भरकर कैसे ले जाऊँ?' जमनाने उत्तरमें कहा—'अरे! मैं किस काम आऊँगी? मेरे बेटेके पास साइकिल है। वह तुम्हारे लिये दो केन ज्यादा भरकर ले आयगा और यूँ पानीकी तो अतिरिक्त व्यवस्था हो जायगी।' गंगा चुपचाप रोज पानी गर्म करती और उन मरीजोंको दे देती।

अब तो बात फैलने लगी कि गंगाके यहाँ गर्म पानीसे नहानेसे बीमारी ठीक होती है, सो अनेकों मरीज आने लग गये। पड़ोसियोंको लगता कि हम कुछ नहीं तो अतिरिक्त पानी लाकर गंगाकी मदद कर सकते हैं। बस, कोई पानी ला देता, कोई ईंधन। गंगाको अब थकान भी नहीं होती, न आलस्य आता। वह प्रसन्न मनसे यह सब करती रही। यह अहसास कि उसे जीवनका उद्देश्य मिल गया है, जो उसे संसारके लिये उपयोगी बना रहा है, उसको आनन्दित कर देता था। झुण्ड-के-झुण्ड लोग आते, वहाँ नहाते और गंगाको आशीर्वाद देते हुए चले जाते।

मीडिया आ पहुँची। उसे पुरस्कारहेतु आवेदन करनेकी सलाह दी। गंगाने कहा—'मैं संतोष और आनन्द पानेहेतु यह कार्य करती हूँ, पुरस्कारके लिये नहीं।' एक दिन एक धनाढ्य महिला आयी। गंगाकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए बोली कि वह उसे नहानेके सौ साबुन और सौ तौलिया दे सकती है ताकि नहानेवालोंको अतिरिक्त सुविधा मिल सके। गंगाने कहा—'बहनजी! यह कुटिया सबके काम आती है। इसपर कभी ताला नहीं लगता। साबुन और तौलियोंकी हिफाजतके लिये ताला लगाना पड़ेगा। अनेक प्रकारकी बातें भी खड़ी होंगी। हाँ, आप अपने हाथसे नहाते समय ये वस्तुएँ उन्हें उपलब्ध करायें तो उचित होगा।

गंगाकी कुटिया अब कुटिया नहीं रही। वह तो 'गंगाघाट' बन गया था। वह साधारण-सी गंगा उस महान् गंगाके समान बन गयी थी, जो स्वर्गसे आकर शिवजीकी जटामें रमती हुई धरतीपर उतरी थी कि जिसमें डुबकी लगा लेनेसे जन्म-जन्मके पाप एवं भवरोग मिट जायँ, जिसकी एक घूँट अन्त समयमें कण्ठमें आ जाय तो जीव भवबन्धनसे छूट जाय।

गंगाकी भाँति हम सबके जीवनमें कोई अवसर हमें पुकारता है; हमारे जीवनको उपयोगी बनानेका अवसर लेकर आता है। आवश्यकता है उस पावन क्षणको लपक लेनेकी, जो धीरे-धीरे जीवन-लक्ष्यमें परिवर्तित हो परमानन्दका प्रदाता बन जाता है। बस, चौकन्ने रहें।

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई॥

कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही उत्तम है, जो गंगाजीकी तरह सबका हित करनेवाली हो। [**श्रीरामचरितमानस**]

कर्मयोगका शाश्वत रहस्य

(डॉ० सुश्री नीलमजी)

गीता व्यावहारिक वेदान्तका सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसका प्रमुख उद्देश्य मानवमात्रको निष्कामभावसे निज कर्तव्य-पालनहेतु संलग्नकर उसे आध्यात्मिक उन्नति प्रदान करना है। भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें स्पष्ट रूपसे इस तथ्यको स्वीकार करते हैं कि कर्मसे किसी भी प्रकारसे वंचित नहीं रहा जा सकता। जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त यह प्रक्रिया अबाध गतिसे गतिशील है। जीवनके प्रत्येक क्षणमें कर्म अनिवार्य रूपसे सम्बद्ध है। जीवनकी गतिशीलता कर्मके द्वारा ही निर्धारित होती है। इसलिये गीतामें कहा गया है कि कर्म किये बिना कोई भी प्राणी क्षणमात्र भी जीवित नहीं रह सकता। कर्म प्रकृतिका अनिवार्य परिणाम है, किंतु इसका निर्धारण करना आवश्यक है कि कर्म किस प्रकार किये जायँ। वस्तुत: गीतामें कर्मकी गतिको अति गहन कहा गया है। कर्मोंकी इस गहनताके विषयमें विद्वान् पुरुष भी मोहित हो जाते हैं। प्रत्येक मनुष्यमें 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' की अनुभूति करनेकी एक नैसर्गिक प्रवृत्ति है। इस अनुभूतिको ज्ञान, कला और प्रेमके रूपमें अभिव्यक्त करनेकी हममें एक रचनात्मक अभिलाषा होती है। कर्म तभी सार्थक हो सकता है, जब यह उच्चतर अनुभूतिका साधन तथा आत्म-अभिव्यक्तिकी प्रक्रियाका रूप धारण कर लेता है।

स्वामी विवेकानन्दजीके मतानुसार—'हम किसके अधिकारी हैं, हम अपने भीतर क्या-क्या ग्रहण कर सकते हैं, इन सबका निर्धारण कर्मके द्वारा ही होता है। अपनी वर्तमान अवस्थाके जिम्मेदार हम ही हैं; और जो कुछ हम होना चाहते हैं, वह हमारे वर्तमान कार्योंद्वारा ही निर्धारित किया जा सकता है। अतएव हमें यह जान लेना आवश्यक है कि कर्म किस प्रकार किये जायँ।' गीताके कथनानुसार—'कर्मयोगका अर्थ है—कुशलतासे अर्थात् वैज्ञानिक प्रणालीसे कर्म करना।' कर्मानुष्ठानकी विधिको भलीभाँति जाननेसे मनुष्यको श्रेष्ठ परिणाम प्राप्त हो सकता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि समस्त कर्मोंका उद्देश्य है मनके भीतर पहलेसे ही विद्यमान शक्तिको प्रकट कर देना या आत्माको जाग्रत् कर देना। प्रत्येक मनुष्यके भीतर पूर्ण शक्ति और पूर्ण ज्ञान विद्यमान है। भिन्न-भिन्न कर्म इन महान् शक्तियोंको जाग्रत् करने तथा बाहर प्रकट कर देनेमें साधनमात्र हैं।

अर्जुन क्षत्रिय है, अत: उसका स्वाभाविक, सहज एवं स्वधर्म युद्ध है। महाभारतका युद्ध अर्जुनपर परिस्थितिवश थोपा गया है, अत: वह धर्म्य है। इस प्रकारका धर्मयुद्ध भाग्यवान् क्षत्रियजन प्राप्त करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण इस धर्मयुद्धकी ओर अर्जुनका ध्यान आकर्षितकर उसे युद्धहेतु प्रेरित करते हैं। इस धर्मयुद्धमें अर्जुनके समक्ष उसके प्रतिपक्षी गुरुजन, पारिवारिकजन और मित्रगण हैं। युद्धमें गुरुजनों और सगे-सम्बन्धियोंकी मृत्युका विचार अर्जुनको भयभीत कर रहा है। परिणामत: वह युद्धसे विमुख होकर संन्यास ग्रहण करना चाहता है। पारमार्थिक दृष्टिकोणसे निश्चय ही एक ही परमतत्त्व परमात्मा सबमें विद्यमान है, परंतु व्यावहारिक दृष्टिकोणसे सभी जीवात्मा हैं। आत्मदृष्टिसे भले ही पापका प्रश्न उपस्थित न हो, किंतु देहदृष्टिमें ये दोनों एक ओर अग्रसर होते हैं। इस परिस्थितिमें युद्ध भले ही क्षत्रियोंका धर्म हो, परंतु इससे होनेवाली हिंसाका पाप किस प्रकार दूर होगा। यही अर्जुनका द्वन्द्व है। अर्जुनकी इसी द्वन्द्वात्मक मन:स्थितिके निराकरणहेतु भगवान् श्रीकृष्ण उसे कर्मयोगके माध्यमसे युद्धहेतु प्रेरित करते हैं। कर्मयोगमें भगवान् श्रीकृष्णने आत्मदृष्टिकी पारमार्थिकता और देहदृष्टिकी व्यावहारिकताका अद्भुत सुन्दर समन्वय किया है। देहदृष्टिसे युद्धको धर्म्य अर्थात् कर्तव्य-कर्म स्वीकार करना है, जबकि आत्मदृष्टिसे युद्धसे प्राप्त होनेवाले परिणामोंके प्रति समत्वबुद्धिका अभ्यास करना है। अत: भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं कि 'सुख-

दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजयको समान समझकर फिर तुम युद्धके लिये प्रवृत्त हो जाओ। इस प्रकार कर्तव्य कर्म करनेसे तुम्हें पाप स्पर्श भी नहीं कर सकेगा।'

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥

(२।३८)

इस प्रकार समत्वबुद्धिसे युद्धद्वारा होनेवाला जो आनुषंगिक पाप है, वह नहीं लग पायेगा। प्रत्येक कर्मके सामान्यतः दो परिणाम होते हैं—(१) मुख्य परिणाम और (२) आनुषंगिक परिणाम। उदाहरणार्थ भोजन करनेके कर्ममें भूखका निवारण मुख्य परिणाम है, जबकि जिह्वाका स्वाद उसका आनुषंगिक परिणाम है। युद्धका मुख्य परिणाम है धर्मराज्यकी स्थापना और उसका आनुषंगिक परिणाम है हिंसा, हत्या या पाप। अर्जुनको आनुषंगिक परिणामसे होनेवाली हिंसा भयभीत कर रही है। अर्जुनके इस भयके निराकरणहेतु श्रीकृष्ण उसे समदृष्टिका रसायन प्रदान करते हैं। प्रस्तुत श्लोकमें सुख-दुःख, लाभ-हानि, जय-पराजयमें समत्वबुद्धि अपनानेकी शिक्षा दी गयी है। समत्वबुद्धिका अभ्यास एक सतत प्रक्रिया है। युद्धका भौतिक पक्ष है—जय या पराजय। उसका परिणाम है—लाभ-हानि, यह युद्धका मानसिक पक्ष है। इस लाभ-हानिका भी परिणाम है—सुख या दुःख, यह युद्धका बौद्धिक पक्ष है। युद्धमें विजय प्राप्त करनेसे राज्यकी प्राप्ति होगी, परिणामतः सुख प्राप्त होगा जबकि पराजय होनेपर, राज्यसे वंचित होनेपर दुःख प्राप्त होगा। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण भौतिक, मानसिक एवं बौद्धिक—तीनों स्तरोंपर समदृष्टिका उपदेश देते हैं। जय और पराजयमें समत्वभावका अभ्यास भौतिक पक्षपर साम्यकी सृष्टि करेगा। जय और पराजयके परिणामस्वरूप प्राप्त लाभ और हानिमें समताका भाव मानसिक स्तरपर समताको विकसित करेगा। इसी प्रकार लाभ और हानिसे प्राप्त सुख और दुःखमें समदृष्टिका अभ्यास बौद्धिक स्तरपर समत्वभावको उत्पन्न करेगा। इस प्रकार समग्र रूपसे समदृष्टिका अभ्यास कर्मको कर्मयोगमें परिणत कर देता है।

सामान्यतः मानवीय कर्म या तो वासनासे प्रेरित होते हैं या धर्मसे। पापका भय हमें वासनात्मक कर्मोंसे होता है, धर्मप्रेरित कर्मोंसे नहीं। यदि अर्जुन इस कामनासे प्रेरित होकर युद्ध करता कि युद्ध जीतकर वह नाना प्रकारके भोगोंका आनन्द लेगा, राज्य-सुखका भोग करेगा, तब इस प्रकार रागात्मक वासनासे प्रेरित युद्धसे हिंसाके पापका भय है, किंतु यदि वह समत्वबुद्धिसे युक्त होकर कर्तव्यकी भावनासे युद्ध करेगा तो हिंसाका पाप उसे स्पर्श भी नहीं करेगा। जो कर्तव्य-कर्म समत्वबुद्धिसे युक्त होकर किये जाते हैं, वे शास्त्र एवं गुरु-निर्दिष्ट होते हैं। इस प्रकारके कर्तव्य-कर्मसे वासना चरितार्थ नहीं होती, अपितु शास्त्र एवं गुरुके आदेशोंका पालन अन्तर्निहित होता है। अतः ऐसे कर्तव्य कर्मोंमें जो आनुषंगिक दोष होते हैं, वे हमें स्पर्श भी नहीं कर पाते हैं। यह कर्मयोगका शाश्वत रहस्य है।

ईश्वर-प्राप्तिके लिये गृहत्याग आवश्यक नहीं

योग सीखनेके लिये वनमें जाना या अनाहारी होना नहीं पड़ता। चित्तवृत्तिके निरोधका नाम ही योग है। वशमें की हुई इन्द्रियादिको इष्टसाधनमें लगानेकी क्षमता जिसमें है, उसके लिये घर या वन दोनों समान ही हैं। एकाग्रता योगका प्राण है, इस एकाग्रताके कारण जब जीवात्मा और परमात्मा एकीभूत हो जायँगे, जीवात्मा और परमात्मामें कोई भेद लक्षित न होगा, तभी साधक वास्तविक योगी होगा। ईश्वरकी प्राप्तिके लिये योगांगोंका सहारा नहीं लेना पड़ता; भक्तिके द्वारा ही साधक ईश्वरमें समाहित हो सकता है। भक्त भक्तिके द्वारा भगवान्‌को प्रसन्न करके उनमें समाहित होता है। इसीको 'समाधि' कहते हैं।—महात्मा श्रीतैलंग स्वामी

परिवार-समृद्धिकरण

(श्रीकरणसिंहजी चौहान)

ईसापूर्व पाँचवीं सदीमें सुकरातने कहा था—'हमारे नवयुवक आज ऐशो आरामका जीवन पसन्द करते हैं। शारीरिक कसरत और श्रमके बजाय उन्हें आपसमें बैठकर गप्पें लगाना अत्यधिक प्रिय लगता है। उनमें अशिष्टता घर कर गयी है। प्रशासन और उसके नियमोंके प्रति उनमें घृणा भरी है तथा वे अपने बड़ोंका अनादर करते हैं। जब कोई कमरेमें आता है तो वे उठकर उसका सम्मान नहीं करते हैं, वे अपने माँ-बापकी सलाहकी घोर उपेक्षा करते हैं और उनकी बातोंको काटनेमें ही अपनी शान समझते हैं। अपनी मित्रमण्डलीमें व्यर्थ एवं अनर्गल प्रलाप करते रहते हैं अपने गुरुजनोंको शालाओंमें आतंकित करते हैं।'

उक्त उदाहरणको पढ़कर दो विचार मनमें आते हैं। पहला क्या समाजके ये कर्णधार युवा सदैव अर्थात् पाँचवीं सदीसे आजतक इसी प्रकार रहे हैं और दूसरा यह कि यदि यह स्थिति अब और भी भयानक रूप ले रही है तो इसका समाधान क्या है?

परिवारको समृद्धि, शान्ति एवं आनन्दकी राहपर चलाना, परिवारके मुखियाका कार्य है। परिवारके सदस्योंके बीच आपसमें एक-दूसरेसे कितना प्रेम है एवं उनकी कैसी मनोवृत्ति है, यही उसकी सफलता या असफलताका द्योतक है। यदि किसी भी रोगका निदान प्रारम्भमें ही नहीं किया जाता तो वह रोग एक गम्भीर रूप धारण कर लेता है।

आयुर्वेदमें रोगके लक्षणोंका आकलन **दर्शनम्, स्पर्शनम्** एवं **प्रश्नम्** पद्धतिसे किया जाता है। परिवारके सदस्योंमें समयकी पाबन्दी तथा उनके रहनेका ढंग एवं उनका व्यवहार, दर्शनका प्रतीक होता है। स्पर्शसे यहाँ तात्पर्य बच्चों और युवाओंके मनोविज्ञान या मनोवृत्तिसे है, जिसका पता उनके व्यवहार और कार्यकुशलतासे लगता है। पूछे गये प्रश्नोंके उत्तरसे सही रूपसे अनुमान लगाया जा सकता है कि व्यक्तिकी क्या दशा एवं दिशा है।

कन्फ्यूशियसने विवेक प्राप्त करनेकी तीन पद्धतियाँ बतायी थीं—मनन, जो सर्वश्रेष्ठ है; नकल, जो सरल है और अनुभव, जो बहुत कड़वा है। यह विचारणीय है कि हम कौन-सी पद्धति अपनाएँ। साथमें कोलरिजके इन विचारोंपर भी गहनतासे विचार करें—'पीड़ा भरा होगा यह विश्व बच्चोंके बिना और कितना अमानवीय होगा यह वृद्धोंके बिना।'

इसी सन्दर्भमें जापानके एक प्रकाशक कोटारो उचिडाके उद्गार वर्तमानमें परिवारकी परिस्थितियोंको उजागर करते हैं, 'मेरे पुत्रने मुझे युद्धोपरान्त बताया कि प्रजातन्त्र जो अमेरिकासे लाया गया है, का अर्थ है—हर व्यक्ति अपने लिये है और इस कारण वह (मेरा पुत्र) वृद्धावस्थामें मेरी देखभालसे मुक्त हो गया। मैं इस पक्षमें नहीं हूँ, लेकिन इसके लिये विवश हूँ।'

हम जब भी किसी एक समस्याका गहनतासे विश्लेषण करते हैं तो इस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि हम ही उस समस्याकी जड़ हैं—कारण हैं। भारतमें परिवार सदैवसे ही एक न्यूनतम इकाई रहा है न कि एक व्यक्ति। आगे बढ़नेके पहले यहाँ हमें कुछ समय ठहरकर विचार करना पड़ेगा कि परिवार एक संस्था है और कोई भी संस्था तभी सफलता प्राप्त करती है, जब उसमें निरन्तरता होती है और बदलाव होता है।

एक नवविवाहिताका घरमें प्रवेश एक बदलाव होता है। पति पक्षके परिजन एक निरन्तरता हैं और नव-विवाहिता वर्तमान है, जो एक बदलाव लेकर आती है। परिवारके साथ रहना या अलग होना उसी समय तय-सा हो जाता है, जब बहू घरमें आती है। सिस्टर निवेदिताने अपनी पुस्तक 'वेव ऑफ इण्डियन लाइफ' में सुन्दर रूपसे इसका वर्णन किया है और लिखा है कि नववधूके लिये पति एक व्यक्ति नहीं, एक घर है, परिवार है।

धनको कुलदेवी मानकर जब घरके वरिष्ठजन घरमें बोनस, वेतन, पेंशन, जमीन, टी०वी०, कार आदिकी बातें करते हैं और बच्चोंको शिक्षा देते हैं कि 'कह दो पिताजी घरपर नहीं हैं'—इससे असत्य बोलनेके संस्कार बच्चोंको मिलेंगे। ऐसी स्थितिमें सुधार लानेके लिये बच्चोंके व्यक्तित्व-निर्माणके प्रति पूर्ण सजग होना अनिवार्य है।

बच्चोंके लिये अपना समय दीजिये, धन नहीं। उन्हें अपने त्यौहारों, अपने पूर्वजोंके बारेमें बताइये, उनके साथ मिलकर काम कीजिये, उनके साथ बैठकर अच्छी

पुस्तकें पढ़िये। उन्हें प्रश्न पूछनेके लिये प्रेरित कीजिये। खेल एवं मनोरंजनके साथ विज्ञानका ज्ञान प्रदान कीजिये, साथ रहकर आनन्द बाँटिये—हँसी-मजाक कीजिये। साथ पहाड़ी चढ़िये, उनमें रुचि लीजिये, उनके बारेमें बातें कीजिये आदि। जो परिवार साथ मिलकर प्रभु-स्मरण करता है एवं साथ भोजन करता है, वह सदैव एक साथ रहता है। उनके अभद्र व्यवहारको धीरजपूर्वक सुधारनेका उपाय कीजिये। 'ऐसा ही होता है' उसे मानकर गति मत दीजिये।

पंचतन्त्रमें लिखा है कि 'आप विषका सेवन इसलिये नहीं करें कि आपके शहरमें चिकित्सक रहता है।'

खलील जिब्राननने प्रोफेटमें कहा हैं—'जीवन पीछे नहीं जाता। आप धनुष हैं, जिससे आपकी तीररूपी संतानें अग्रसर होती हैं। उनकी आत्मा आनेवाला कल रचती हैं, आप उनतक नहीं पहुँच सकते, सपनेमें भी नहीं।' जहाँतक युवा पीढ़ीका प्रश्न है, उनकी भ्रान्तियोंका विश्लेषण करना अनिवार्य है।

आधुनिक बननेका अर्थ—आधुनिकताका अर्थ पाश्चात्य जीवन-शैलीकी नकल या अति-आधुनिक भौतिक वस्तुओंका उपयोग नहीं होता। आधुनिकताका अर्थ है, वैज्ञानिक एवं विवेकपूर्ण मनोवृत्ति। आधुनिक प्रौद्योगिकी हमें ब्रह्माण्ड और एक-दूसरेका शत्रु बना देती है। इसका सबसे घातक प्रभाव यह होता है कि यह हमें स्वयंका शत्रु बना देती है। यह हमें वस्तुओंका भौतिक रूप प्रदान करती है और ऐसा तबतक होता रहता है, जबतक हम स्वयं वस्तु न बन जायँ।

पाण्डवोंके आदर्शोंका स्मरण करें, जो आपसमें कभी नहीं लड़े एवं कभी आपसी प्यार, श्रद्धा एवं सम्मानको नहीं तोड़ा। आज घरके चार सदस्य, एक ही छतके नीचे रहते हुए भी ऐसा महसूस करते हैं कि वे चार उपग्रहोंमें निवास कर रहे हैं। आपसी सम्बन्ध प्यारसे जोड़ें, स्वार्थसे नहीं। जेक केनफिल्ड एवं मार्क हेनसेनने अपनी बहुचर्चित पुस्तक 'चिकन सूप फॉर दी सोल' में एक मकबरेपर लिखे एक शिलालेखको प्रकाशित किया है, जो निम्न प्रकार है—

'मैं विश्वको परिवर्तित करना चाहता था, तत्पश्चात् मेरे देश और मेरे परिवारको, परंतु अब जब मैं मृत्यु-शय्यापर हूँ, मुझे अचानक ऐसा अहसास हो रहा है कि यदि सर्वप्रथम मैं अपने आपको परिवर्तित कर पाता तो स्वयंके उदाहरणसे अपने परिवार और सम्भवत: विश्वको भी परिवर्तित कर पाता।'

वृद्धोंके आदरसे विवेककी प्राप्ति होती है। इस सन्दर्भमें इकारसकी यह कहानी उपयुक्त है। एक बार इकारस और उसके पिताको कारागारमें बन्द कर दिया गया। पिताने अपनी बुद्धिमानीसे मोमके पंख बनाये और पिता-पुत्रने कारागारसे भागनेकी योजना बनायी। जब वे कारागारसे बाहर उड़ रहे थे, उस समय पिताने पुत्रसे कहा कि वह ज्यादा ऊपर न उड़े; क्योंकि ऊपर उड़नेसे सूर्यकी किरणें सीधी पड़ेंगी एवं मोम गल जायगा। मगर पुत्रने यह बात नहीं सुनी। क्षणभरके आनन्दके लोभवश उसका मोम पिघल गया।

अत: अपनेसे बड़ोंका आदर करना हमारा कर्तव्य है, उनके पास जीवनका अमूल्य अनुभव होता है। डब्ल्यू० एस०ऑडन० ने जीवित व्यक्तिके सम्मानके लिये लिखा है—'अगर हो सके तो हम जीवित व्यक्तिको सम्मान दें; क्योंकि हम तो आजकल किसी औरको नहीं, बस मृतकको सम्मान देते हैं।'

परिवारके आनन्द एवं प्रगतिके लिये त्याग अति-आवश्यक है। यह आश्चर्यजनक बात है कि यह गुण प्रकृतिके बनाये हर जीवमें उपस्थित है। स्कैंडेनीवियामें एक खास प्रजातिका चूहा (रोडेन्ट) होता है, जिसे लेमिंग कहते हैं। लेमिंग पहाड़ोंकी चोटीपर रहता है, जब भी असाधारण रूपसे उनकी संख्यामें वृद्धि होती है और खानेकी कमी हो जाती है, तब उनमेंसे बहुत-से रोडेन्ट समुद्रमें कूदकर जान दे देते हैं। यह दृश्य लोग बड़े अचरजसे देखते हैं और वैज्ञानिक भी इससे चकित हैं।

हर व्यक्ति अपनेमें ही सम्पूर्ण है। परिवार एक ऐसी इकाई है, जहाँ व्यक्ति अपनी सम्पूर्णताका लाभ उठाते हुए आनन्द एवं प्यारका अनुभव करता है। आनन्द और प्यार दोनों ही भौतिक वस्तुओंमें नहीं है—यह तो स्वयं हममें ही है। आजके परिप्रेक्ष्यमें अगर एक परिवार एक साथ प्रार्थना करे, साथ भोजन करे एवं स्वयंमें त्रुटियाँ और दूसरोंमें गुण देखे तो किसी भी विपदामें वह परिवार संगठित रह सकता है।

ज्योतिर्लिंग-परिचय—

द्वादश ज्योतिर्लिंगोंके अर्चा-विग्रह

[गताङ्क ३ पृ०-सं० ३२ से आगे]

(३) श्रीमहाकालेश्वर

सप्तमोक्षदायिनी पुरियोंमें अवन्तिका (उज्जैन) भी एक पुरी है। यह उत्तर भारतका एक प्रमुख शैव-क्षेत्र है। उज्जैनके महाकालवनमें शिप्रा नदीके तटपर भगवान्

महादेवका 'महाकालेश्वर' ज्योतिर्लिंग प्रतिष्ठित है। अवन्ती या अवन्तिका भगवान् शिवको बहुत ही प्रिय है। यह परम पुण्यमय और लोकपावनी पुरी है। महाकालेश्वर-लिंगकी स्थापनाके सम्बन्धमें पुराणोंमें अपने आख्यान प्राप्त होते हैं। एक कथाके अनुसार उज्जयिनीके राजा चन्द्रसेनकी शिवार्चनाको देखकर श्रीकर नामक एक पाँच वर्षका गोपबालक बड़ा ही उत्कण्ठित हुआ। वह एक सामान्य पत्थरको घरमें स्थापितकर उसकी शिवरूपमें उपासना करने लगा, परिवारजनोंने बालककी इस क्रियाको साधारण खेल समझकर तथा इस आदतको मिटानेके लिये अनेक प्रकारके कठिन प्रयत्न किये, किंतु शिवभक्त श्रीकरकी शिवभक्ति अनुदिन बढ़ती ही गयी। अन्तमें अपने भक्तको दर्शन देनेके लिये भगवान् ज्योतिर्लिंग-रूपमें महाकालवनमें प्रकट हुए और वहीं स्थित हो गये।

एक दूसरा इतिहास यह भी है, किसी समय इस अवन्तिकापुरीमें एक अग्निहोत्री वेदपाठी ब्राह्मण रहता था, जो अपने देवप्रिय, प्रियमेधा, सुकृत और सुव्रत नामक चार पुत्रोंके साथ शिवनिष्ठा तथा धर्मनिष्ठाकी पताका फहरा रहा था। उसकी कीर्ति सुनकर ब्रह्माजीसे वर-प्राप्त एक महामदान्ध दूषण नामक असुर, जो रत्नमाल पर्वतपर रहता था, अपने दल-बलसहित चढ़ आया। लोगोंमें त्राहि-त्राहि मच गयी। अन्ततः उस ब्राह्मण तथा ब्राह्मणपुत्रोंकी शिवभक्तिके प्रतापसे भगवान् भूतभावन एक गर्तसे प्रकट हो गये और उन्होंने एक हुंकारमात्रसे उस असुरको सेनासहित विनष्ट कर डाला और फिर वे संसारके कल्याणके लिये सदा वहीं वास करनेका उस ब्राह्मणको वर देकर अन्तर्धान हो गये। तबसे भगवान् शंकर लिंगरूपसे वहाँ स्थित हो गये। चूँकि भगवान् भयंकर हुंकारसहित वहाँ प्रकट हुए थे, इसलिये वे 'महाकाल' नामसे प्रसिद्ध हुए।

भगवान् महाकालेश्वर-मन्दिरका प्रांगण विशाल

है। मन्दिर अत्यन्त भव्य एवं रमणीय है। भगवान्का ज्योतीरूप भूमिकी सतहसे नीचे एक गर्भगृहमें स्थापित है। लिंगमूर्ति विशाल है और चाँदीकी जलहरीमें नाग परिवेष्टित है। इसके एक ओर गणेश, दूसरी ओर पार्वती तथा तीसरी ओर स्वामी कार्तिकेयकी मूर्ति विराजमान है। द्वारके सामने नन्दीकी विशाल प्रतिमा है। शिवरात्रिपर यहाँ बहुत भीड़ होती है। उज्जैनका शिप्राके तटपर लगनेवाला कुम्भका मेला तो प्रसिद्ध ही है। श्रद्धालु भक्तगण भगवती शिप्रामें स्नान तथा महाकालेश्वरका दर्शनकर अपनेको धन्य मानते हैं। [क्रमशः]

कहानी—

अमरूदका पेड़

(श्रीहरिप्रकाशजी राठी)

जैसे महाजन अपने बढ़ते धनको देखकर खुश होता है, किसान अपने लहलहाते खेतोंको देखकर खुश होता है, माता अपने प्रिय पुत्रको देखकर खुश होती है, वैसे ही नवीनजी अपने घरके आँगनमें लगे अमरूदके पेड़को देखकर खुश होते थे। न जाने उन्हें इस पेड़से क्यों लगाव हो गया था! कोई पाँच साल हुए, उन्होंने नर्सरीसे लाकर इसको पौधेके रूपमें लगाया था। बड़े जतनसे इसकी देखभाल करते थे। समय-समयपर खाद, पानी—सब कुछ मुहैया कराते थे।

समय जाते देर नहीं लगती। पेड़ भी अपने कद्रदानके घर आकर ऐसा फूला-फला-जैसे शुक्लपक्षका चन्द्रमा। वर्ष-दर-वर्ष बढ़ता गया और कुछ ही वर्षोंमें फलोंसे लद गया। शामको आँगनमें आराम-कुर्सीपर इस पेड़के सायेमें बैठकर नवीनजीकी सारी थकावट दूर हो जाती थी। बच्चा जवान होकर जब सुपुत्र हो जाता है तो माता-पिता उसको पालनेमें उठायी गयी सारी पीड़ाको भूल जाते हैं। ठीक, यही हाल नवीनजीका इस पेड़को लेकर था।

नवीनजी, जिनका पूरा नाम नवीनचन्द्र दत्ता है, अब प्रौढ़ हो चुके हैं। सरपर कुछ-कुछ बाल ही नजर आते हैं, जैसे विदा लेते यौवनके अवशेष हों, परंतु उनका ललाट देदीप्यमान है तथा चेहरेसे सौम्य एवं विद्वान् नजर आते हैं, हृदयसे अत्यन्त दयालु हैं एवं उन्हें देखते ही लगता है, जैसे कोई भला उपकारी आदमी हो।

कॉलोनीमें उनकी सबसे अच्छी मित्रता है, दरअसल उनके सहज स्वभावके कारण लोग उनसे अक्सर मिलने आते थे। सबके सुख-दु:खमें बढ़-चढ़कर काम आते थे। शादी हुए कोई २० वर्ष हो गये, एक बेटा और एक बेटी है—मुकुल एवं मालती। पत्नी शालिनी समझदार एवं व्यावहारिक है, पर उन्हें मूर्ख ही समझती है। उसे अच्छी तरहसे मालूम है कि मेरे पतिदेवको सभी मूर्ख बनाते हैं, सभी उनकी झूठी तारीफें करते हैं एवं कलेक्टरेटमें इनकी नौकरीके जरिये काम निकालते रहते हैं। उनके बच्चोंका नजरिया भी अपने पिताके बारेमें ऐसा ही है। नौकरी करते बीस वर्ष हो गये, अभी भी बाबू ही हैं। प्रमोशनके नामपर हर बार धता! प्रमोशन परिणामके दिन हर बार मुँह लटकाये चले आते हैं, पूछनेकी जरूरत ही नहीं है, उनका चेहरा ही उनका दर्पण है। नवीनजी चुपचाप सह लेते हैं यह सब। उन्हें मालूम है कि भले एवं अच्छे इंसान के लिये इस दुनियाँमें वितृष्णाके अतिरिक्त कुछ नहीं है, उसकी खुशी तो उसके आत्मसन्तोषमें ही छिपी है।

इस बार सीजनमें अमरूदके पेड़पर बहुत फल आये। पेड़ जैसे अमरूदोंसे लद गया। टप-टप करके ऊपरसे ढेर सारे अमरूद सुबह गिरते तो नवीनजी उन्हें धोकर कुछ घरमें रखते, कुछ तुरंत ही कॉलोनीमें भिजवा देते। घरसे बाहर निकलते तो लोग कह ही देते, 'भई नवीनजी! आपके पेड़-जैसे मीठे अमरूद तो कभी नहीं खाये'। नवीनजीको इससे एक भीतरी खुशी मिलती थी। शायद अमरूदका पेड़ भी इसे कहींसे सुन लेता था, प्रशंसित होकर बढ़-चढ़कर फल देता। सुबह-शाम पेड़पर न जाने कितने पक्षी—कोयल, कौवे, कबूतर, मोर आते थे एवं फल खाकर जाते थे। कॉलोनीके बच्चे तो उस पेड़के इर्दगिर्द ही रहते थे। उन्हें तो जैसे स्वर्ग मिल गया था। उन्मत्त शैशवको और क्या चाहिये? सबको मालूम था कि नवीनजी कुछ नहीं कहनेवाले। ऑफिससे आते-जाते इन बच्चोंको देखकर नवीनजीका हृदय भीग जाता, लगता उनके जीवनसे कोई एक छोटा-सा अर्थ निकल आया हो। सज्जन इंसानकी यही निशानी है, मिट्टी किसीकी भीगती है, परंतु तृप्ति उसको मिलती है। दु:ख किसीको पहुँचता है, परंतु पीड़ा उसके अंतसमें उभरती है।

आज ऑफिससे आते हुए वे चार-पाँच लोहेके हुक लगवाकर बाँस ले आये थे। घर आते ही पत्नी-बच्चोंने टोका, 'ये क्या कर रहे हैं आप! क्या आपको मालूम है, इससे हमें कितनी तकलीफ होती है?' सारे

दिन बच्चे मुण्डेरपर बैठे रहते हैं, पक्षी अधपके फल गिराते रहते हैं। सफाई कर-करके थक जाते हैं और आप यह बाँस भी ले आये? कुछ और भी कसर रह गयी थी।' बड़े सहज भावसे नवीनजीने कहा, 'भाग्यवान्, बच्चोंको बहुत तकलीफ होती है। अभी कल ही पड़ोसी गिरीशजीके बच्चे अमरूद तोड़ते हुए गिर गये थे। मैंने सोचा, बाँस छप्परपर रख दूँ तो बच्चे छप्परसे लेकर बाँससे अमरूद तोड़ लेंगे।'

एम०ए० फर्स्ट क्लास पत्नीने सर पीट लिया। मन-ही-मन कुढ़ी और खीझकर रह गयी। एक यही बेवकूफ मिला था जगत्में मेरे लिये, लेकिन नवीनजी चुप। अमरूदका पेड़ भी उनके साथ चुप खड़ा था, मानो कह रहा था कि संसारके मूर्खोंमें तुम अकेले नहीं हो, लेकिन दोनों दाता होनेका सुख जानते थे। धरती जैसे धन-धान्यसे भरकर सब कुछ अपनी संतानोंको दे देती है, वैसे ही विसर्जनके सारगर्भित सुखसे नवीनजी मालामाल थे।

इस बार तो सीजनमें इतने फल आये कि कॉलोनीके लोग तो क्या पक्षी भी निहाल हो गये! यहाँतक कि गाय, बकरियाँ भी अधपके फलोंको खानेके लिये आने लगीं। सभी उस पेड़को दुआ देते थे एवं इन दुआओंके मिलते अमरूदका पेड़ हर वक्त फलोंसे भरा मिलता था। कल्पवृक्ष हो गया था पेड़। उपकारी व्यक्तिकी सम्पत्ति जैसे कभी खाली नहीं होती, वैसी ही हालत पेड़की थी। प्रकृतिका यह गूढ़ रहस्य नवीनजीके साथ-साथ पेड़को भी समझमें आ गया था।

शायद किसीकी दुआ नवीनजीको भी लग गयी। इस साल उनका वर्षोंसे रुका प्रमोशन हो गया। अब वे अपने महकमेमें अधिकारी हो गये, लेकिन प्रमोशनके साथ ही उनका स्थानान्तरण भी जोधपुर से साढ़े तीन सौ किलोमीटर दूर जयपुर हो गया। नवीनजीकी वर्षोंकी मुराद पूरी हुई। बुढ़ापेमें उन्हें 'बाबूजी' सुनना बहुत बुरा लगता था। सोचा कम-से-कम बच्चों की शादीमें तो कह पाऊँगा कि मैं सरकारमें अफसर हूँ। अफसर आखिर अफसर ही होता है। बाबूको तो सब्जीवाला भी सलाम नहीं करता। पैसा ही सब कुछ थोड़े ही है, इज्जत भी तो कुछ चीज है। इंसानकी मनःस्थिति के अनुकूल ही उसके विचार बन जाते हैं। चूँकि दूसरी जगह तुरंत रिपोर्ट करना था, अतः आनन-फाननमें ही सामान पैक हो गया। उन्होंने मकान-मालिकका हिसाबकर उन्हें चाबी पकड़ा दी, कहा, 'हम सभी कल यहाँसे चले जायँगे।' नयी जगहकी नयी तकलीफें नवीनजीके जेहनमें घूमने लगी थीं। रात बराबर सो भी नहीं पाये।

सुबह सूर्य जल्दी ही उग आया था, शायद उसे भी नवीनजीको विदाई देनी थी। अच्छे दिनोंमें समय जाते देर नहीं लगती। आँगनमें हलका सुनहरा प्रकाश बिखरने लगा था। अमरूदका पेड़ आँगन में यथावत् खड़ा था, पत्तियोंपर ओसकी बूँदें सुहावनी लग रही थीं। नवीनजीने एक-एककर सारा सामान बाहर भिजवाया एवं घर खाली होनेपर आँगनमें आये। अबतक बच्चे एवं पत्नी भी बाहर जा चुकी थी! नयी सरकारी गाड़ीमें बैठनेकी सबको जल्दी थी।

अमरूदका पेड़ जैसे उन्हें विदाई देनेको खड़ा था, मूक और प्रगल्भ। उसे देखते ही भाव-विभोर हो गये। कसकर पकड़ लिया उसे और फफककर रो पड़े। इस शहरको छोड़ते हुए उन्हें सर्वाधिक दुःख इस पेड़को छोड़नेका हो रहा था, मानो कोई भाई भाईसे बिछुड़ रहा हो। सँभलकर उन्होंने उसपर प्यारसे हाथ फेरा, जैसे उसे समझा रहे हों कि इस जीवनमें कौन हमेशा साथ रहा है। हर रिश्तेकी एक उम्र होती है, शायद तुम्हारा-मेरा इतना ही साथ हो। नवीनजी शायद वहीं खड़े रहते, पर बाहरसे बिटियाकी आवाज सुनकर चौंके, 'पापा! कॉलोनीके लोग और बच्चे आपका बाहर इंतजार कर रहे हैं।'

नवीनजी बाहर आये और आश्चर्यचकित रह गये। कॉलोनीके सभी लोगोंने उन्हें फूलोंसे लाद दिया। बच्चे-बूढ़े सभी उन्हें बाहर सरकारी गाड़ीतक छोड़ने आये। गाड़ीमें बैठते-बैठते भी वे अमरूदका पेड़ देखना न भूले। शायद कह रहे हों, 'मित्र! फिर मिलेंगे।'

समय कितना जल्दी बीत जाता है, पता ही नहीं चलता। नये कामकी आपाधापी एवं जिम्मेदारीमें नवीनजीको पता ही नहीं चला कि जोधपुर छोड़े दो वर्ष हो गये।

इन्ही दिनों आफिसके कामसे कोर्टकी एक पेशीके सिलसिलेमें उन्हें जोधपुर जाना पड़ा। जोधपुर सुबह पहुँचकर उन्होंने सोचा पहले कोर्टका ही काम कर लिया जाय। होटलसे तैयार होकर वे सीधा कोर्ट पहुँचे। पेशीसे वापस आते-आते उन्हें दो बज गये। सीधे होटल पहुँचकर कमरा खाली किया एवं गाड़ीमें नीचे आकर बैठ गये। ड्राइवर उनका इंतजार ही कर रहा था।

गाड़ीमें बैठते-बैठते उन्हें पुराने घरकी याद हो आयी। पुरानी स्मृतियाँ कुरेदने लगीं। कॉलोनी रास्तेमें ही थी, सोचा लगे हाथों सभीसे मिल लें। पुरानी यादें ताजा हो आयीं। अमरूदका पेड़ देखनेको उनका अंतस तड़प उठा। वे सीधे अपने पुराने घरमें गये और यह देखकर अचम्भित हो गये कि वहाँ अब कोई पेड़ नहीं था। नये किरायेदारने बताया कि पेड़ कुछ समय पूर्व गिर गया, उसे फिंकवा दिया गया। इसी दरम्यान कॉलोनीके गिरीशजी वहाँ आ गये। उन्हें दूर एक तरफ ले गये। कहने लगे, 'नवीनजी! क्या बतायें, आपके जानेके बादसे ही इस पेड़के बुरे दिन आ गये। नये किरायेदार शर्माजी कड़क आदमी हैं, उन्होंने पेड़पर किसीको नहीं चढ़ने दिया। बच्चे भी डरसे अब मुंडेरपर नहीं जाते। पक्षियोंको गुलेलसे मारते रहते हैं एवं पेड़के फल बाँटनेका तो सवाल ही नहीं। सिवाय खुदके खानेके किसी औरको फल देना तो इन्होंने सीखा ही नहीं। थोड़े ही दिनोंमें जैसे पेड़को नजर लग गयी। पेड़में कीड़े लग गये। इस वर्ष कोई फल नहीं आया, थोड़े दिनोंमें ही पेड़ ठूँठ हो गया एवं गिर गया।' नवीनजीको जैसे सदमा लगा।

वे चुपचाप आकर गाड़ीमें बैठ गये एवं ड्राइवरको गाड़ी चलानेको कहा। गाड़ीमें आते ठण्डे झोंकोंसे शायद उनका मन शांत हुआ। सोचा, यह प्रकृति अपने आपमें कितनी पूर्ण है। जबतक फल बँट रहे थे, फल आ रहे थे। ज्योंही संचय शुरू हुआ, जैसे गंगोत्री ही कट गयी। जो देना नहीं जानता, उसे प्रकृति देती भी नहीं है। एक अजीब-से विषादभरे इस ज्ञानके मर्मको सोचते-सोचते न जाने कब उनकी आँख लग गयी।

श्रीजानकी-स्तुति

(पंचरसाचार्य श्रद्धेय स्वामी श्रीरामहर्षणदासजी महाराज)

जय जय सुनैनानंद वर्धिनि, जनक जाया जानकी।
जय जय महल मिथिलेश क्रीड़ति, जनक-जननी-प्राण की॥
पितु मातु भाभी भ्रात अंकहि, सरसि क्रीड़ा कारिणी।
सुख समृद्धि पितु पुर प्रकाशित, प्रमुद प्रभु हिय धारिणी॥
रस रसिक रघुवर रूप रसिका, रास लीला कोविदा।
प्रिय-प्राण दृगन चकोर चन्दा, सुधा सिन्धु प्रमोददा॥
तव पाद-कंज पराग पीवत, हंस योगी बनि मधुप।
सह शक्ति बिधि हरि शंभु सेवित, अकथ महिमा अति अनुप॥
कृपास्वरूपिणि की कृपा लहि, सरस सेवा राम की।
पद कंज पाय पराग सेवत, सोह सरसत धाम की॥
बिन तव कृपा बिधि हरि हरहु, कहँ दर्श दुर्लभ राम रस।
औरन कथा का कहि चलाई, सबहिं जगती जाल फँस॥
सुशक्ति अनादि अचिन्त परमा, सबहिं सब सुख श्रेयदा।
भव थिति विलय जग कार्य कारिणि, राम रति अविरल प्रदा॥
सिय 'राम हर्षण' दास आशा, पूर्ण स्वामिनि कीजिये।
निज सहित प्रभु प्रिय प्रेम पूरण, सेव सुन्दरि दीजिये॥

[प्रेषक—पं० श्रीरामायणप्रसादजी गौतम]

संत-चरित—

योगावतार लाहिड़ी महाशय

(आचार्य श्रीप्रतापादित्यजी एम०ए०, एल-एल०बी०)

आध्यात्मिक जीवनका प्रारम्भ

१८६१ का मधुमास था। श्यामाचरण लाहिड़ी दानापुरमें उस समय सेना-विभागमें आंकिकके पदपर कार्य कर रहे थे। अचानक उन्हें बताया गया कि तारद्वारा उनका स्थानान्तरण रानीखेत होनेका आदेश प्राप्त हुआ है और वहाँ सेनाका एक नया कार्यालय स्थापित किया जा रहा है। श्यामाचरण लाहिड़ीने तुरंत आदेशका पालन किया और वे रानीखेत पहुँच गये। रानीखेतकी पहाड़ियोंका एकान्त जैसे उन्हें बार-बार खींचता हो और वे कार्यालयके कार्य सम्पन्न करनेके बाद प्राय: पहाड़ोंपर घूमा करते। कुछ ही दिनों बाद एक दिन दूर पहाड़ीसे उन्हें अपनेको पुकारनेका स्वर सुनायी पड़ा। थोड़ा भ्रममें झिझकते हुए वे उस ओर बढ़े। उस स्थानके समीप पहुँचनेपर देखा तो एक कन्दराके पास एक युवा संन्यासी मुसकराता हुआ खड़ा था, उनके स्वागतार्थ अपनी लम्बी भुजाओंको फैलाये। उस युवा संन्यासीने हिंदीमें कहा—'मैं ही तुम्हें बुला रहा था। आओ, इस गुफामें बैठो।'

जब वे दोनों गुफामें प्रवेश कर गये तो युवा संन्यासीने गुफामें रखे हुए कम्बल और पूजा-सामग्रियोंकी ओर इशारा करते हुए पुन: हिंदीमें श्यामाचरणजीसे पूछा—'लाहिड़ी! क्या तुम इन वस्तुओंको पहचान रहे हो?' श्यामाचरणजीने कुछ झिझकते हुए उत्तर दिया—'नहीं।' और इस विचित्र रहस्यात्मक परिस्थितिके अटपटेपनसे शीघ्र मुक्ति पानेके लिये कहा कि 'उन्हें कार्यालयमें कुछ कार्य है, अत: शीघ्र वापस जाना है।' युवक संन्यासीने मुसकराते हुए अबकी बार अंग्रेजीमें कहा, 'कार्यालय तुम्हारे लिये यहाँ बुलाया गया है, कार्यालयके लिये तुम नहीं। तुम्हारे बड़े अधिकारीको तार भेजकर तुम्हें बुलवानेकी प्रेरणा देनेवाला मैं ही था।' मनको प्रेरित करनेकी इस घटनाका तात्त्विक विवेचन प्रस्तुत करते हुए युवा साधुने कहा—'जब किसी व्यक्तिका मन मानवमात्रसे एकात्मताका बोध प्राप्त कर लेता है, तब वह किसी भी मनसे अपनी इच्छाकी पूर्ति करा लेता है।' और, जैसे श्यामाचरणजीकी पूर्वस्मृतिको कुरेदते हुए उन्होंने कहा—'तुम्हें इन वस्तुओंको पहचानना चाहिये ही।' और इन शब्दोंके साथ ही उन्होंने श्यामाचरणजीके मस्तकपर अपने हाथोंका स्पर्श दिया। स्पर्शके साथ-साथ श्यामाचरणके मस्तिष्कमें स्मृतिकी बिजली कौंध गयी; उनकी स्मृतिमें एक-पर-एक दृश्य आने लगे और वे अस्पष्ट शब्दोंमें बोल उठे—'आप—मेरे गुरुदेव, बाबाजी हैं—आप सदा-सर्वदा मेरे अपने रहे हैं, आपके साथ मैंने पूर्वजन्मके कई वर्षोंको बिताया है—यह मेरे उपयोगमें आनेवाला कम्बल है और—घटनाके दूसरे पक्षको पूरा करते हुए युवा सद्गुरुने कहा—'तीन दशाब्दियोंसे अधिक मैंने तुम्हारी प्रतीक्षामें बिताये हैं। कृतकर्मोंके परिणामस्वरूप तुम्हें हठात् अपनी देह छोड़नी पड़ी और तुम जीवनके परे मृत्युकी गोदमें चले गये। तुमने मुझे अपनी दृष्टिसे ओझल कर दिया था; किंतु, मेरी दृष्टि तुमपर बराबर लगी रही। अन्धकार, प्रकाश, तूफान, शून्यता, उथल-पुथलके बीचमें, पक्षीके नये बच्चेको जैसे उसकी माँ उसकी हर कच्ची उड़ानमें सँभालती रहती है, उसी प्रकार मैं तुम्हे सँभालता रहा। तुम्हारे जन्मके बाद तुम्हारी इस पक्वावस्थाकी प्रतीक्षा

करता रहा। तुम जब बच्चे थे तो नदियाकी रेतोंके बीच तुम्हारी हर ध्यानमुद्राको अलक्ष्य रूपमें मैं प्रेरित करता। तुम्हारी पूजाके उपकरणोंको इन वर्षोंमें मैं यत्नपूर्वक सँभाले रहा।' भावविभोर श्यामाचरण सद्‌गुरुकी करुणामूर्तिको अपलक देखते रहे और मन-ही-मन सद्‌गुरुके दिव्य प्रेममें अवगाहन करते रहे। थोड़ी देरकी आयी हुई इस भाव-भीनी निस्तब्धताको तोड़ते हुए युवक सद्‌गुरु बोले—'तुम्हें शुद्धीकरणकी आवश्यकता है'—और एक पात्रमें रखे हुए पेयकी ओर इशारा करते हुए उन्होंने आदेश दिया—'इसे पी लो और पहाड़ीके नीचे बहती हुई नदीमें स्नान करके वहीं पड़े रहो।'

श्यामाचरणने आदेशका यथावत् पालन किया। पर्वतीय हिमशीतल झकोरे शरीरसे छूकर वापस चले जाते और अन्तरकी गरमीके सुखद अनुभवको और प्रच्छन्न कर देते, मानो बाह्य प्रकृति और अन्त:प्रकृतिमें साम्य उपस्थित करनेके लिये संघर्ष छिड़ गया हो। यह क्या श्यामाचरणका मन तेजीसे बदल रहा था—गोगाश नदीकी हिमशीत लहरियाँ उनके शरीरमें सिहरन पैदा कर देतीं, शेरोंका गर्जन समीप ही सुनायी पड़ता, किंतु श्यामाचरण ब्राह्य प्रकृतिकी भयानकतासे अप्रभावित अन्तरकी आध्यात्मिक गुदगुदीसे खेलते हुए, सद्‌गुरुके आदेशकी प्रतीक्षामें पड़े थे। किसीकी पगध्वनिसे आकृष्ट होकर देखा तो कोई उन्हें हाथोंका सहारा देकर जमीनसे उठा रहा था और कह रहा था—'भाई! चलो, गुरुदेव तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।' और वे दोनों जंगलकी ओर बढ़ चले।

वे थोड़ी दूर चले कि उनको प्रभातकालीन प्रकाशके समान एक ज्योतिपुंज दिखायी पड़ा। श्यामाचरणजीने आश्चर्यमिश्रित स्वरमें सहयात्रीसे प्रश्न किया—'क्या प्रभातकालीन सूर्य निकल रहा है? अभी तो रात्रि शेष होनी चाहिये।' पथदर्शकने मुसकराते हुए कहा—'यह अर्द्धरात्रि है। सामने दिखायी पड़नेवाला प्रकाश स्वर्ण-आभायुक्त एक आवास है। जीवनके किन्हीं वर्षोंमें आपने एक ऐसे ही महलकी इच्छा की थी और उसका संस्कार बना लिया था। आज गुरुदेव आपकी इस एकमात्र इच्छा (संस्कार)-को संतुष्ट करके आपको सर्वदाके लिये कर्मबन्धनसे मुक्त करना चाहते हैं। यही भवन आपकी दीक्षाका स्थान होगा।' धीरे-धीरे इस दिव्य भवनमें दोनोंने प्रवेश किया। पूर्णत: सुसज्ज इस भवनमें अनेक साधक ध्यानमग्न बैठे थे। एक दिव्य वातावरणसे आपूरित इस भवनके निर्माणके विषयमें प्रश्न करनेपर पथप्रदर्शकने कहा—'यह सम्पूर्ण विश्व भूमा-मनकी विराट् कल्पनामें निर्मित है और इसकी धारकशक्ति परमाणुओंको उनकी इच्छाशक्ति संयुक्त किये रहती है। गुरुदेव उसी भूमा-मनसे अपनेको एकाकार कर चुके हैं, अत: अपनी इच्छासे वे भी किसी भी रूपका निर्माण कर सकते हैं। यह भवन भी ठीक उसी प्रकार आपेक्षिक सत्य है, जैसे वस्तुजगत्। गुरुदेवने अपनी चित्त-धातुसे भवनका निर्माण किया है और उसके प्रत्येक अणु-परमाणुको वे अपनी इच्छाशक्तिसे धारण किये हुए हैं। एक स्वर्णपात्र और उसमें जटित रत्नोंकी ओर इशारा करते हुए पथप्रदर्शकने कहा—'लो इसे देखो,' भौतिक जगत्की सभी परीक्षाओंमे यह भौतिक जगत्के उपादानोंके ही समान दिखेगा।' और श्यामाचरणजीने उसकी थोड़ी-बहुत परीक्षा करके देखा वह वास्तविक था।

जब वे युवा योगीके पास पहुँचे तो उन्होंने श्यामाचरणजीसे पूछा—'लाहिड़ी! क्या तुम अब भी स्वर्णमहलकी कल्पना करोगे? जागो, आज तुम्हारे जीवनकी सभी इच्छाएँ सदाके लिये पूर्ण होने जा रही हैं। क्रियायोगकी दीक्षाद्वारा आध्यात्मिक जगत्में प्रवेश करो।' दीक्षा समाप्त हुई और उसके साथ ही भौतिक जगत्का कल्पनामहल सर्वदाके लिये श्यामाचरणजीके मनसे समाप्त हो गया। सद्‌गुरुके आदेशानुसार उसी कन्दरामें उसी कम्बलपर एक सप्ताहतक श्यामाचरणजीने साधना की और जब पूर्वजन्मकी सम्पूर्ण मन:स्थितिका उदय हो गया तो आशीर्वाद देते हुए और भावी कार्यक्रमका संकेत करते हुए युवा योगीने कहा—'मेरे पुत्र! इस जीवनमें तुम्हारा कार्यक्षेत्र अब जन-संकुल समाजके बीच होगा। कई जन्मोंतक एकान्त साधनाके द्वारा उपार्जित शक्तियोंके साथ तुम्हें जन-समाजमें मिलकर

रहना है। इस जीवनमें विवाह और पूर्ण उत्तरदायित्वोंके बाद ही जो तुम मुझसे मिले हो, उसके पीछे एक निश्चित उद्देश्य है। तुम्हें अलक्ष्य रहकर साधना करनेकी इच्छाका परित्याग करना होगा। तुम्हारा कार्यक्षेत्र जन-समाज है, जहाँ तुम्हें एक गृहस्थ योगीके आदर्शकी स्थापना करनी है, उनमें यह आत्मविश्वास जगाना है कि वे किसी भी उच्च आध्यात्मिक उपलब्धिके सर्वथा योग्य हैं। अनेक सांसारिक मनुष्योंकी आर्त पुकार अनसुनी नहीं हुई है। तुम्हें क्रियायोगके प्रचारद्वारा अनेक व्यक्तियोंको आध्यात्मिकता प्रदान करना है।' श्यामाचरणजी अनेकानेक जन्मोंसे गुरुसम्पर्कको पाकर छोड़ना नहीं चाहते थे, किंतु योगी युवकने आदेश दिया—'हमारे लिये कभी कोई अलगाव नहीं है। मेरे प्रिय! तुम जहाँ भी मुझे बुलाओगे, मैं तुम्हारे सम्मुख तुरंत उपस्थित हो जाऊँगा।'

आशीर्वादका प्रयोग

लगभग दस दिनों बाद श्यामाचरणजी अपने कार्यालय वापस लौटे। वहाँके लोग यह समझते रहे कि श्यामाचरण रानीखेतके जंगलोंमें मार्ग भूल गये थे। किंतु उन्हें क्या पता था कि वे मार्ग भूले नहीं, बल्कि वह मार्ग पा गये—जो मार्ग अनन्त आनन्दका शाश्वत मार्ग है, जिसे पानेके लिये अनेक जन्मोंकी साधना आवश्यक है। श्यामाचरणजीके वापस लौटनेके साथ-ही-साथ शीर्ष कार्यालयका पत्र उन्हें प्राप्त हुआ, जिसमें यह आदेश दिया गया था कि वे दानापुर कार्यालय वापस चले आयें; क्योंकि उनका स्थानान्तरण भ्रमवश हो गया था।

रानीखेतसे दानापुर लौटते समय रास्तेमें मुरादाबादमें एक बंगालीपरिवार (मोइत्रा महाशय)-के यहाँ श्यामाचरणजी दो-एक दिनोंके लिये रुके। वहाँ युवा मित्रोंकी मण्डलीमें अध्यात्म-विषयक चर्चा होनेपर मोइत्रा महाशयने कहा कि 'आजकल वास्तविक संत कहाँ उपलब्ध हैं।' इसपर उत्तेजित होकर श्यामाचरणजीने कहा कि 'भारतभूमि कभी भी उच्च शक्तिसम्पन्न संतोंसे रहित नहीं रही है और आज भी वैसे संत मौजूद हैं।' इसी संदर्भमें उन्होंने अपने पूर्वानुभवोंकी चर्चा की। उपस्थित मण्डलीने उन्हें समझाते हुए कहा कि 'उनका मस्तिष्क पहाड़के एकान्तमें भयाक्रान्त होनेके कारण भ्रमित हो गया था।' सत्यके प्रत्यक्ष अनुभवोंसे आपूरित श्यामाचरणजीने अपने पक्षको पुष्ट करनेके लिये योगी सद्‌गुरुके उस आशीर्वादको बताया, जिसके द्वारा उन्होंने श्यामाचरणजीको यह आशीर्वाद दिया था कि उनके आवाहित करनेपर वे प्रत्यक्ष हो सकते हैं। उपस्थित लोगोंने उसका प्रमाण माँगा और तब श्यामाचरणजीने एकान्त कमरेमें सद्‌गुरुको आवाहित करना प्रारम्भ किया मित्र-मण्डली कमरेके द्वारपर चौकसी कर रही थी। थोड़े ही समयमें कमरा प्रकाशसे भर गया और युवा संन्यासी देश, काल, पात्रके बन्धनोंको तोड़ते हुए प्रकट हुए; किंतु उनकी मुद्रा गम्भीर थी। उन्होंने किंचित् गम्भीरतापूर्वक कहा, 'लाहिड़ी! क्या तुमने मुझे एक खेलके लिये बुलाया है? आध्यात्मिक सत्य वास्तविक जिज्ञासुओंके लिये है, न कि किसी व्यक्तिकी साधारण उत्सुकताकी शान्तिके लिये।' श्यामाचरणजीको अपनी भूलका भान हो गया, किंतु पुनः प्रार्थना करते हुए उन्होंने निवेदन किया कि 'उनका उद्देश्य नास्तिकोंको आस्तिक बनानेका एक प्रयोग था। इसलिये उसको सफल बनाकर ही वे जायँ।' उनकी यह प्रार्थना स्वीकृत तो हुई अवश्य, किंतु इस शर्तपर कि भविष्यमें सद्‌गुरु आवश्यकता समझकर ही प्रकट होंगे। आदेश पाकर श्यामाचरणजीने द्वार उन्मुक्त किया और विस्फारित नेत्रोंसे सम्पूर्ण मण्डलीने सद्‌गुरुके दर्शन किये; किंतु इतनेपर भी उनमेंसे एक लौकिक ज्ञानकी उद्दण्डतासे प्रेरित होकर बोल उठा—'यह तो सामूहिक सम्मोहन है, यह वास्तविकता नहीं है; क्योंकि कोई भी हमारी जानकारीके बिना कमरेमें प्रविष्ट ही कैसे होता?' युवा साधुने हँसते हुए सबको अपने मांसल शरीरका स्पर्श दिया और विगत-मोह युवकमण्डली दण्डायमान होकर प्रणत हो गयी। सद्‌गुरुने अपनी उपस्थितिको और प्रमाणित करनेके लिये कहा कि 'जलपानके लिये हलुआ तैयार करो।' और जलपान तैयार होनेतक वे विभिन्न विषयोंपर वार्ता करते रहे, सबके

साथ-साथ जलपान किया और सबके सामने ही चित्तद्वारा सृष्ट शरीरको एक विचित्र ध्वनिमें विलीन कर दिया।

इन पंक्तियोंके पाठक भी इसे सम्भवत: दन्तकथा ही समझते हों; किंतु किसी घटनाको यद्यपि ऐतिहासिकताका प्रमाण-पत्र इतिहासविभाग या पुरातत्त्वविभाग ही देनेका दावा करता है, फिर भी इस घटनाका विवरण जिन पुस्तकोंमें प्राप्य है, उनका ही प्रमाण साहित्य और दर्शनका शोधकर्ता दे सकता है। इन घटनाओंका विशद विवरण तथा श्यामाचरणजीके विषयमें दो पुस्तकोंमें तथ्य उपलब्ध हैं। १९४१ में प्रथम बार एक पुस्तक बंगालमें 'श्रीश्री श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय' नामसे प्रकाशित हुई, जिसमें उनके जीवनका सविस्तार वर्णन है। दूसरी पुस्तक 'श्रीयोगानन्दकी आत्मकथा' है, जो 'एक योगीकी आत्मकथा' नामसे प्रथम बार कैलीफोर्नियाकी एक प्रकाशन संस्थाद्वारा १९४६ में प्रकाशित हुई थी और दूसरी बार जैको पब्लिशिंग हाउस, बम्बईद्वारा १९६३ में प्रकाशित हुई थी। इन दो सूत्रोंके अतिरिक्त तन्त्रसाधकोंकी व्यक्तिगत चर्चाओंमें श्रीलाहिड़ी महाशय और उनके गुरुदेवके विषयमें कुछ तथ्य प्राप्त हुए हैं। लेखकको ऐसे तन्त्रसाधकोंका साक्षात्कार हुआ है, जिन्होंने लाहिड़ी महाशयसे साक्षात्कार किया है और उनके तथा उनकी परम्पराओंके वे प्रत्यक्षदर्शी थे।

जन्म और जीवन

लाहिड़ी महाशयका जन्म ३० सितम्बर १८२८ ई० को बंगालमें कृष्णनगरके समीप नदिया जिलेके अन्तर्गत घुर्नी ग्राममें हुआ था। उनके पिताका नाम श्रीगौरमोहन लाहिड़ी और उनकी माताका नाम मुक्तकाशी था। उनका पूरा नाम श्यामाचरण लाहिड़ी था। तन्त्रसाधकोंमें वे लाहिड़ी महाशयके नामसे प्रसिद्ध थे। लगभग ३-४ वर्षकी अवस्थासे ही उनमें आध्यात्मिक प्रवृत्तिके लक्षण उदित हो गये थे और प्राय: नदियाकी बालुकाओंमें लिपटे हुए वे ध्यानमग्न पाये जाते थे। १८३३ में उनका गाँव जलमग्न हो गया, अतएव उनका परिवार वाराणसीमें आकर रहने लगा। इस प्रकार बंगालमें जन्म लेकर भी जीवनका अधिकांश उन्होंने उत्तर प्रदेशकी परम पुनीत नगरी काशीमें बिताया। अपने विद्यार्थीजीवनमें न केवल विद्याध्ययनमें बल्कि खेल-कूदमें भी आप परम कुशल थे। संस्कृत, बंगला, फ्रेंच और अंग्रेजीका आपने अच्छा अध्ययन किया था।

१८४६ में आपका विवाह श्रीमती काशीमुनीसे सम्पन्न हुआ और उनके दो पुत्र और दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। १८५१ में आपने सेना-विभागके इंजीनियरिंग विभागमें नौकरी स्वीकार की और १८८६ तक नौकरी करके सेवानिवृत्त हुए। इसी बीच पिताकी मृत्युके बाद उन्होंने गरुड़ेश्वर मुहल्लेमें एक मकान भी खरीदा और मृत्युपर्यन्त वहीं रहकर जिज्ञासु साधकोंको क्रियायोगकी दीक्षा दिया करते थे। आपने २६ सितम्बर १८९५ को यह नश्वर शरीर त्याग दिया और तन्त्रसाधकोंकी श्रुतियोंके अनुसार अपने गुरुदेवकी सदा-सर्वदा वर्तमान रहनेवाली गुरुमण्डलीमें सम्मिलित हो गये।

कुछ श्रुतियाँ और सद्‌गुरु

लाहिड़ी महाशय तथा उनके युवागुरु, जो 'बाबाजी' नामसे प्रसिद्ध हैं, तारकब्रह्मकी उस संस्थाके नामसे जाने जाते हैं, जो सदा-सर्वदा जिज्ञासु साधकोंको योग और तन्त्रकी साधना बताकर उनका कल्याण किया करते हैं। कहते हैं बाबाजी आज भी अपनी मण्डलीके साथ भारतवर्षमें एक ऐसी तान्त्रिक क्रान्तिका मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं, जो भारतवर्षके इतिहासमें केवल तीन बार सम्पन्न हुआ है, एक तो सदाशिवके रूपमें, दूसरे महापुरुष श्रीकृष्णके रूपमें और तीसरे महापुरुष बुद्धके रूपमें। वैसे अलक्ष्यरूपमें आपने ही शंकराचार्यको काशीमें ब्राह्मी साधनाकी दीक्षा दी थी, जमालपुरके जंगलोंमें बाबा गोरखनाथको तान्त्रिक दीक्षा दी थी और श्रीरामकृष्ण परमहंसके गुरु तोतापुरीजीको दीक्षा दी थी। आज भी बाबा नामसे पुकारनेपर साधक उनकी कृपा आकर्षित करते हैं और यदि उन्मुक्त दृष्टिसे ढूँढ़ें तो उन्हें पा भी सकते हैं।

आस्था-श्रद्धा-विश्वास

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

ईश्वरके सम्बन्धमें साधकोंके लिये तीन शब्दों—आस्था, श्रद्धा और विश्वासका प्रयोग होता है।

सर्वप्रथम तो ईश्वर केवल माननेका ही है। हम अपने जीवनमें बहुत कुछ मानते ही हैं, हमारी व्यक्तिगत जानकारी नहीं होती है। यह मेरा भाई है, बहन है, माता हैं, पिता हैं आदि बचपनसे सुनकर माना ही तो जाता है तो फिर वेद-वाणीसे, गुरु-वाणीसे, संतवाणीसे सुनकर कि ईश्वर हैं, इसीमें क्यों विकल्प और प्रश्न होता है ? मैं ईश्वरको नहीं मानता हूँ—यह एक प्रकारकी ऐंठ (Snobbery) ही है। वैसे अधिकांश यह तो मानते ही हैं कि एक कोई सत्ता है, जो इस समस्त सृष्टिकी रचयिता है, परंतु वही अपना सच्चिदानन्द स्वरूप ईश्वर है, परम कृपालु और सबका रखवारा है—यह स्वीकृति नहीं बन पाती।

हमारे न माननेसे उनकी सत्तामें कोई अन्तर नहीं होनेका और हमारे न माननेपर भी वे परम उदार हमारे ऊपर कृपा करना बन्द नहीं करते। ऐसा नहीं करते कि मुझे नहीं मानोगे तो साँस नहीं लेने देंगे या इन्द्रियाँ काम नहीं करेंगी आदि। उन्होंने हमें पूर्ण स्वाधीनता दे रखी है कि हम उन्हें मानें या न मानें।

पर यह तो हमारी अपनी आवश्यकता है कि हमें नित्य और सर्वत्र विद्यमान, सामर्थ्यवान् और अहैतुकी कृपा करनेवाले, जो पात्र-कुपात्रका विचार किये बिना ही कृपाकी अनवरत वर्षा करते हों—ऐसे ईश्वरका सहारा चाहिये। उनके होते हुए हम अनाथ और असहाय नहीं हैं, मात्र उनको स्वीकार करके अपनेको सनाथ और किसी समर्थका सम्बल प्राप्त है—ऐसा अनुभव करेंगे।

बस, इतना ही तो मानना है कि ईश्वर हैं—सर्वत्र हैं, सदैव हैं, सबके हैं, ऐश्वर्यवान् हैं और अद्वितीय हैं। सदैव हैं तो अभी भी हैं, सर्वत्र हैं तो मुझमें भी हैं, सबके हैं तो अपने भी हैं, महिमावान् हैं और अपने-जैसे एक ही हैं। वे हमें अपना जानते और मानते भी हैं।

यह तो हमारी भूल है कि हम उनसे विमुख हैं। वे तो लालायित रहते हैं कि यह मेरा अपना कब मेरी ओर निहारे। वे तो पूर्ण हैं, उन्हें किसी चीजकी आवश्यकता नहीं है। उन्हें तो मात्र प्रेम चाहिये।

हमें तो उनकी सत्ता स्वीकार करके उनसे आत्मीय सम्बन्ध मानकर उनका प्रेमी बन जाना है। प्रेममें देना ही देना होता है—जहाँ चाह हुई कि वह भी हमें प्रेम करें तो वह प्रेम न होकर प्रेमका व्यापार हो गया।

वे मेरे अपने हैं; बस, इसलिये वे मुझे प्यारे लगते हैं। वे मुझे प्यार करेंगे या करते हैं कि नहीं, यह वे ही जानें। यह एक दृष्टिकोणकी बात है, अन्यथा वे हमें प्यार तो करते ही हैं, नहीं तो अहैतुकी कृपाकी अनवरत वर्षा क्यों करते रहते ?

उनकी सत्ता स्वीकार करनेपर यह ध्यान रखना आवश्यक है कि हम उन्हें अपना साध्य (The One sought after) बनायें न कि सांसारिक उपलब्धियोंके लिये साधन।

हमसे यह भी भूल होती है कि हम अपनी सांसारिक इच्छाओं/कामनाओंकी पूर्तिके लिये उनसे कहते रहते हैं। अरे, क्या वे अज्ञानी हैं, क्या उन्हें हमारी आवश्यकताओंका पता नहीं है ? जो वे आवश्यक समझेंगे, वह हमारे माँगे बिना ही पूरी कर देंगे और करते हैं। शरणागतके आवश्यक कार्य प्रभु स्वयं पूरा करते हैं और यह शरणागत साधकोंका अनुभव भी है। प्रभुसे कुछ भी न माँगना अन्यथा घाटेमें रहोगे। कृष्ण-सुदामाका प्रसंग इसका सटीक उदाहरण है। द्वारका जाकर सुदामाजीने कुछ नहीं माँगा तो उन्हें क्या नहीं मिला और यदि वह माँगे होते तो कदाचित् यही कहते कि बड़ी गरीबी है, दो जून खानेका प्रबन्ध कर दो। तो माँगनेपर घाटा ही तो होता।

अगर उनसे कुछ माँगना ही है तो मात्र यह कि प्रभु तुम मुझे प्यारे लगो, मुझे अपना प्रेमी बना लो। क्यों ? क्योंकि प्रभु-प्रेमसे अधिक मूल्यवान् कुछ और इस सृष्टिमें है ही नहीं। कुछ और माँगेंगे तो घाटेमें ही तो रहेंगे।

सो 'विकल्परहित भावसे उन्हें स्वीकार करनेका नाम ही आस्था है।'

'उनकी महिमाको स्वीकार करना आस्थावान्में श्रद्धा उत्पन्न करता है। जब साधक स्वीकार कर लेता है कि उस महामहिमकी महिमाका वारापार नहीं है तो उसमें स्वत: श्रद्धाकी अभिव्यक्ति होती है।'

'श्रद्धाके जाग्रत् होते ही अन्य विश्वास, अन्य सम्बन्ध,

अन्य चिन्तन नहीं रहता और फिर एक ही विश्वास, एक ही सम्बन्ध, एक ही चिन्तन रह जाता है। इस दृष्टिसे आस्था, श्रद्धा, विश्वासपूर्वक साधक उस अद्वितीय, सर्वसमर्थसे जातीय एकता तथा नित्य सम्बन्ध स्वीकार करता है और फिर स्वत: अखण्ड स्मृति जाग्रत् होती है।'

विडम्बना यह है कि संसार जो अनित्य और परिवर्तनशील है, वह तो हमारी भूलसे प्राप्त मालूम होता है और जो नित्यप्राप्त अविनाशी तत्त्व (ईश्वर) है, वह दूर मालूम होता है। संसारके पीछे दौड़ते रहते हैं, फिर भी पकड़में नहीं आता, तब निराश होकर अपनी भूलका एहसास करते हैं तो अपनेहीमें विद्यमान नित्य, अविनाशी, रसरूप जीवनकी माँगका परिचय हो जाता है और उसकी प्राप्तिके लिये हम साधन-पथ अपनाते हैं। वह परमतत्त्व तो पहलेसे ही प्राप्त है, बस उससे जो विमुखता है, उसका अन्त होकर उसकी सम्मुखता हो जाती है।

मनुष्य अनित्य वस्तुओंसे सुखकी आशा करके उनमें आसक्त हो गया है, इससे ही वह ईश्वरसे विमुख हो गया है। उस परम-प्रियतमको ही अपना मानें, उसीपर विश्वास करें और उसीसे प्रेम करें।'

प्रभु तो 'सबके अकारण हितू', 'अत्यधिक दयालु', 'दया करनेमें कभी आलस्य न करनेवाले हैं।' उनकी कृपालुताका वारापार नहीं है और यही साधकके लिये सबसे उत्साहवर्धक आश्वासन है कि वह सबसे मिलते हैं। 'यदि भक्तको प्रभु भक्तवत्सलताके नाते मिलते हैं तो भाई, पतितको पतितपावन होनेके नाते मिलते हैं।' वाह रे प्रभु, आप कितने महान् हैं! [प्रस्तुति—साधन-सूत्र : श्रीहरिमोहनजी]

'नारायण'-नाम-स्मरणके सम्बन्धमें महामना मालवीयजीका अनुभव

प्रातःस्मणीय पूज्यपाद महामना श्रीमालवीयजीसे मेरा परिचय लगभग सन् १९०६ से था। उस समय मैं कलकत्तामें रहता था। वे जब-जब वहाँ पधारते, तब-तब मैं उनके दर्शन करता। मुझपर आरम्भसे अन्ततक उनकी परम कृपा रही और वह उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। उनके साथ कुटुम्बका-सा सम्बन्ध हो गया था। वे मुझको अपना एक पुत्र समझने लगे और मैं उन्हें परम आदरणीय पितासे भी बढ़कर मानता था। इस नाते मैं उन्हें 'पण्डितजी' न कहकर सदा 'बाबूजी' ही कहता। वे एक बार गोरखपुर पधारे थे और मेरे पास ही दो-तीन दिन ठहरे थे। उनके पधारनेके दूसरे दिन प्रातःकाल मैं उनके चरणोंमें बैठा था। वे अकेले ही थे। बड़े स्नेहसे बोले—'भैया! मैं तुम्हें आज एक दुर्लभ तथा बहुमूल्य वस्तु देना चाहता हूँ। मैंने इसको अपनी मातासे वरदानके रूपमें प्राप्त किया था। बड़ी अद्भुत वस्तु है। किसीको आजतक नहीं दी, तुमको दे रहा हूँ। देखनेमें चीज छोटी-सी दीखेगी, पर है महान्—वरदानरूप।' इस प्रकार प्रायः आध घण्टेतक वे उस वस्तुकी महत्तापर बोलते गये। मेरी जिज्ञासा बढ़ती गयी। मैंने आतुरतासे कहा—'बाबूजी! जल्दी दीजिये, कोई आ जायँगे।'

तब वे बोले—'लगभग चालीस वर्ष पहलेकी बात है। एक दिन मैं अपनी माताजीके पास गया और बड़ी विनयके साथ मैंने उनसे यह वरदान माँगा कि मुझे आप ऐसा वरदान दीजिये, जिसमें मैं कहीं भी जाऊँ सफलता प्राप्त करूँ।'

'माताजीने स्नेहसे मेरे सिरपर हाथ रखा और कहा—'बच्चा! बड़ी दुर्लभ चीज दे रही हूँ। तुम जब कहीं भी जाओ, तब जानेके समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण कर लिया करो। तुम सदा सफल होओगे।' मैंने श्रद्धापूर्वक सिर चढ़ाकर माताजीसे मन्त्र ले लिया। हनुमानप्रसाद! मुझे स्मरण है, तबसे अबतक मैं जब-जब चलते समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण करना भूला हूँ, तब-तब असफल हुआ हूँ। नहीं तो मेरे जीवनमें—चलते समय 'नारायण-नारायण' उच्चारण कर लेनेके प्रभावसे कभी असफलता नहीं मिली। आज यह महामन्त्र—मेरी माताकी दी हुई परम दुर्लभ वस्तु तुम्हें दे रहा हूँ। तुम इससे लाभ उठाना।'

यों कहकर महामना गद्गद हो गये। मैंने उनका वरदान सिर चढ़ाकर स्वीकार किया और इससे बड़ा लाभ उठाया।—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

गायकी प्रत्यक्ष विशेषता

(पं० श्रीगंगाधरजी पाठक 'मैथिल')

शास्त्रीय दृष्टिको न रखकर केवल लौकिक दृष्टि रखी जाय; तब भी गायकी विशेषता सिद्ध होती है। गायके दूधसे पुरुष सात्त्विक-गुणसम्पन्न, अधिक बलवान्, स्वस्थ और दीर्घजीवी होता है। इसका सतत सेवन करनेवाला प्राय: बीमारीसे ग्रस्त नहीं होता। जो अपने बच्चोंको बीमार नहीं करना चाहते; वे उन्हें गायका दूध ही पिलायें। भैंसके दूधसे बच्चे बीमार हो जाते हैं। पुरुषोंकी मानसिक स्फूर्ति मारी जाती है, इससे आलस्य और शारीरिक आरामकी इच्छा तथा तमोगुणकी बहुलता बढ़ती है। उससे बच्चोंको जिगरका रोग और अँतड़ियोंके रोग हो जाते हैं। गायका दही भी पुरुषकी शक्तिको बढ़ाता है। शारीरिकशास्त्रके अनुसार मनुष्यकी आँतोंमें विष उत्पन्न करनेवाले असंख्य कीटाणु भरे रहते हैं। वे कीटाणु दहीके प्रयोगसे मर जाते हैं; इससे उनका विष भी शरीरसे बाहर निकल जाता है और पुरुषकी आयु लम्बी हो जाती है। हमारे पूर्वज बड़े बलवान्, दीर्घकाय तथा दीर्घजीवी होते थे; उसका कारण गायकी छाछका सेवन भी है। आजकल लोग स्वादके लिये सख्तसे सख्त वस्तु खा लेते हैं, उसे पचानेकी चिन्ता नहीं रहती। पर हरेक खाद्यपदार्थको पचानेके लिये मीठी छाछसे उत्तम और कोई चीज नहीं है। वर्षा-ऋतुको छोड़कर शेष समयमें उसका सेवन करनेसे मनुष्य दीर्घजीवी-स्वस्थ और बलवान् बन सकता है, बुढ़ापा भी दूर रहता है; क्योंकि छाछमें शरीरके पोषक तत्त्व प्रचुरमात्रामें विद्यमान हैं। इससे शरीरस्थित विषैले कीड़े नष्ट हो जाते हैं; शरीरके पट्ठे पुष्ट होते हैं। बाल भी जल्दी सफेद नहीं होते हैं। इसीके दूधमें धारणाशक्ति तीव्र बनती है और टिकी रहती है।

गायका बच्चा जब उत्पन्न होता है, तब माँका दूध पीकर खूब कूदता-फाँदता है, भैंसके बच्चेको श्रमपूर्वक उठाया जाता है। उसमें फुर्ती नहीं हो पाती। देखनेमें भी भयानक मालूम देता है। गायके बछड़ेको देखकर मन प्रसन्न हो जाता है। इस प्रकार गायके दूध पीनेवाले भी सात्त्विक, सुन्दर तथा स्फूर्तिमान् रहते हैं। भैंसका दूध पीनेवाले आलसी, मन्दबुद्धि, तामसिक, स्फूर्तिरहित, प्राय: रोगी रहनेवाले, सुस्त, गन्दे विचारोंवाले और विषयी होते हैं। भैंसका बच्चा मर जाय तब भी उस मरे हुएमें भूसा डालकर भैंसके आगे रख देते हैं और वह निर्बुद्धि उसे अपना बच्चा समझकर दूध दे देती है, पर गाय इन बातोंमें आनेवाली नहीं होती; वह समझदार होती है, अत: इस मौकेपर दूध नहीं उतारती। इसी प्रकार भैंसका दूध भी ज्ञानका ह्रास करनेवाला यानी बुद्धिको मोटा कर देनेवाला होता है, उसमें नयी सूझ-बूझ एवं नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभाकी स्फूर्ति नहीं होती, पर गायका दूध इन बातोंका अपवाद है, ज्ञानवर्धक, प्रतिभोत्पादक तथा सौन्दर्यवर्धक भी है। गाय अपनी मुलायम रंगबिरंगी त्वचाद्वारा सूर्यरश्मियोंसे बलवान् प्राणतत्त्वोंका आकर्षण करके अमृतमय दूध देती है, इसमें पोषकतत्त्व (विटामिन) पर्याप्त मात्रामें होता है। भैंसके दूधमें पोषकतत्त्व बहुत कम होते हैं। गर्मीमें भैंसको जबतक पूरा स्नान न कराया जाय; तबतक उसके दूधमें बहुत ऊष्मा बनी रहती है; क्योंकि भैंस आधा जमीनका तथा आधा पानीका प्राणी है, जो कि हानि देनेवाला है और जबतक उसे भारी खुराक न मिले तबतक वह दूध देनेवाली भी नहीं होती; पर गायके लिये इन बातोंकी कोई आवश्यकता नहीं है। एक भैंसके चारेमें चार-पाँच गौओंका पालन हो सकता है। वह हमारा स्थलचर प्राणी है। यही कारण था कि हमारे पूर्वजोंने गोसेवाव्रतको धारण किया था। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियोंने ऐसे साधन बनाये हुए थे, जिनके कारण यहाँकी गौएँ सुगन्धित घी-दूध देती थीं, उनका स्वाद भी उत्तम होता था। वे गायको ऐसा भोजन खिलाते थे, जिससे उसके दूधमें विशेष प्रकारका स्वाद उत्पन्न होता था, उसके सेवनसे मनुष्योंकी स्मरणशक्ति भी बढ़ती थी, विशेष प्रकारके रोग भी दूर होते थे। ऐसी गायको वेदोंमें 'अघ्न्या' का पद प्रदान किया गया है। यह सभी दृष्टियोंसे ठीक है।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

बुद्धि और श्रद्धा

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपने लिखा कि मैं ईश्वरको न तो भूला हूँ और न भूलनेकी आशंका है; रास्ता चाहे दूसरा हो। सो भाई! बहुत अच्छी बात है, रास्तेकी तो कोई बात नहीं; सभी रास्ते अन्तमें जाकर उस एक ही लक्ष्यमें समा जाते हैं। ईश्वरको नहीं भूलना और किसी भी मार्गपर उसे उपलब्ध करनेके लिये मनुष्यको दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ते रहना चाहिये। जगत्के शास्त्रसम्मत सभी धर्मोंमें एक ही सत्य समाया हुआ है। बाह्य रूपोंमें अन्तर होनेपर भी मूलतः और परिणामतः सबका समन्वय है। अवश्य ही तुम्हें और भी विशेष चेष्टाके साथ लगना चाहिये। परमात्माके साधनमें आलस्य करना, समयकी प्रतीक्षा करना और अधूरी स्थितिको ही पूर्ण मान लेना यथार्थ स्थितिकी प्राप्तिमें बहुत बाधक हुआ करता है। मनुष्य-जीवन नश्वर और क्षणभंगुर है, अतएव विशेष प्रयत्न करना आवश्यक है।

तुम्हारा यह लिखना बहुत ठीक है कि 'मनुष्यको अपनी बुद्धिसे काम लेना चाहिये, जहाँ अपनी बुद्धि काम न दे वहाँ बड़ोंसे या जिनपर अपनी श्रद्धा हो—पूछकर उनकी अनुमतिसे काम करना चाहिये। तुम्हारा यह लिखना भी बहुत उचित है कि 'यद्यपि अच्छे पुरुष जान-बूझकर अनुचित नहीं कहते, पर भूल तो सबसे ही होती है।' ये दोनों ही बातें ठीक हैं तथापि बुद्धि और श्रद्धा दोनोंकी ही आवश्यकता है और प्रायः जगत्के सभी क्षेत्रोंमें इन दोनोंसे ही लाभ उठाया जाता है। बुद्धिवाद भी इतना बढ़ जाना बहुत हानिकर होता है, जहाँ अभिमानवश अपनी बुद्धिके सामने सबकी बुद्धिका तिरस्कार किया जाने लगे और श्रद्धा भी इस रूपमें नहीं परिणत हो जानी चाहिये, जिससे ईश्वर, सत्य और सदाचारके विरुद्ध मतको किसीके कहनेमात्रसे स्वीकार कर लिया जाय। मर्यादित रूपसे बुद्धि हो और यह भी माना जाय कि ईश्वरकी सृष्टिमें ईश्वरकी सन्तानोंमें सम्भवतः मुझसे भी अधिक बुद्धिमान् पुरुष हो चुके हैं और हो सकते हैं।

बुद्धिवाद घोर अभिमान, उच्छृखंलता और नास्तिकतामें परिणत नहीं होना चाहिये। मेरी धारणामें तो बुद्धिवादकी अपेक्षा श्रद्धा बहुत ही ऊँची और उपादेय वस्तु है, परंतु उसकी कसौटी यही है कि ईश्वर या सत्यका श्रद्धालु कभी पापका आचरण नहीं कर सकता—श्रद्धामें यह शर्त जरूर रहनी चाहिये।

बुद्धिवादियोंमें भी यह भाव रहना आवश्यक है कि वे अपने लिये अपनी बुद्धिसे काम लेनेका जितना अधिकार समझते हैं, उतना ही दूसरोंके लिये भी मानें, चाहे वे दूसरे उनके अधीनस्थ निम्नश्रेणीके लोग माने जाते हों या कम विद्या प्राप्त हों। यदि मैं किसीपर श्रद्धा करना आवश्यक नहीं समझता तो मुझे ऐसा चाहनेका भी अधिकार नहीं होना चाहिये कि दूसरे कोई मुझपर श्रद्धा करें या मेरी ही बुद्धिको मान दें। जैसे दूसरेसे गलती हो सकती है, वैसे अपनेसे भी तो हो सकती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आँख मूँदकर तो किसीकी बात नहीं माननी चाहिये तथापि कुछ ऐसी बातें भी जगत्में होती हैं, जो हमारे समझमें नहीं आतीं, पर सत्य होती हैं और जिसपर हमारा भरोसा होता है, उसके विश्वासपर हमें उनको स्वीकार भी करना पड़ता है और स्वीकार करना भी चाहिये। वर्तमान वैज्ञानिक युगमें तो ऐसी बहुत-सी बातें हैं।

इसी प्रकार ईश्वरीय साधन-क्षेत्रमें भी है—इस बातका यदि मुझपर कुछ भी विश्वास है तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाकर कह सकता हूँ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आजकल ढोंग बहुत ज्यादा बढ़ गया है, जिससे यह निर्णय नहीं हो सकता कि श्रद्धा किसपर की जाय। जिसपर श्रद्धा की जाती है, प्रायः वही ठग, स्वार्थी, कामी, क्रोधी या लोभी निकलता है। भेड़की खालमें भेड़िया साबित होता है। इसलिये विश्वास तो खूब ठोक-पीटकर करना चाहिये और यथासाध्य सचेत रहना तथा अपने अन्दर भी ईश्वर और ईश्वरकी शक्ति है—इस बातपर भरोसा करके अपनी बुद्धिसे पूरा काम लेना

चाहिये। ईश्वरका आश्रय लेकर अपनी बुद्धिसे काम लेनेवाला निरहंकारी पुरुष कभी नहीं ठगा सकता।

(२)

भगवत्प्रेमकी अभिलाषा

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपके अन्दर जबतक दोष हैं, तबतक अपनेको कभी उत्तम नहीं समझना चाहिये। सारे दोषोंका मिट जाना मालूम होनेपर भी दोषोंकी खोज करनी चाहिये, तथा जरा-सा भी दोष शूलकी तरह हृदयमें चुभना चाहिये। जबतक किंचिन्मात्र भी दूषित भाव हृदयमें रहे, तबतक सूरदासजीकी भाँति अपनेको महान् पातकी ही मानकर प्रभुके सामने रोना चाहिये। आपने जैसा मुझको लिखा है, ऐसा ही बल्कि इससे भी और खुलासा अन्तर्यामी प्रभुसे अपने हृदयकी आर्त भाषामें कहना चाहिये। मनुष्य शायद न सुने, किसीकी भाषाका मर्म न समझ सके, समझकर भी लापरवाही कर दे और समझ भी ले किंतु शक्ति न होनेसे कुछ भी सहायता न कर सके, परंतु भगवान्‌में ये सब बातें कोई-सी नहीं हैं। वह सुनता है, सबके हृदयकी भाषाका रहस्य समझता है, लापरवाही भी नहीं करता और सर्व प्रकार दोष-दु:ख दूर करनेकी उसमें पूर्ण सामर्थ्य भी है, इसलिये मनुष्यको अपने दोष-दु:खोंका नाश करनेके लिये प्रभुसे ही प्रार्थना करनी चाहिये। प्रभु अन्तर्यामी हैं। सब कुछ जानते हैं, परंतु प्रार्थना किये बिना, हमारे चाहे बिना, उनके द्वारा सदा किया जानेवाला उपकार हमपर प्रकट नहीं होता। तथा ऐसा विशेष रूपसे अद्‌भुत कार्य भी नहीं होता जो चाहनेपर होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि चींटीकी चालके बदलेमें भगवान् इच्छागति गरुड़की चालसे ही आते हैं, परंतु चींटीकी चालसे भी उनकी ओर चल पड़ना तो हमारा ही कार्य है। **'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** का यही रहस्य है कि मनुष्य उन्हें चाहने लगे। उनकी तरफ अपनी ही चालसे चलना शुरू कर दे, फिर भगवान् अपनी चालसे चलकर उसके पास बात-की-बातमें पहुँच जायँगे। हमारी मन्द गतिके बदलेमें वे अपनी चाल नहीं छोड़ेंगे। परंतु उनकी ओर चलना, उन्हें चाहना होगा पहले हमें। आप चल पड़े हैं, तो प्रभुके वाक्योंपर विश्वास रखिये, वे आपकी ओर द्रुत गतिसे, आ रहे हैं, यदि नहीं चले हैं तो सब कुछ भूलकर चल पड़िये और फिर देखिये कितनी जल्दी वे आते हैं। भगवान्‌में अनन्य प्रेमकी भिक्षा अनन्यप्रेमी भगवान्‌से ही माँगनी चाहिये। यदि हमारी अभिलाषा सच्ची होगी तो अनन्य प्रेम अवश्य मिलेगा। अनन्य प्रेमकी आपको अभिलाषा है, यह बड़े ही सौभाग्य और आनन्दकी बात है। भगवान्‌में विशुद्ध और अनन्य प्रेम होनेकी अभिलाषासे बढ़कर कोई सौभाग्यभरी उत्तम अभिलाषा नहीं है। यह सर्वोच्च अभिलाषा है। जो मोक्षतककी अभिलाषाको लात मार देनेके बाद उत्पन्न होती है। भगवत्प्रेम पंचम पुरुषार्थ है, जो मोक्षकी इच्छाके भी त्यागसे होता है। और जिसके परे श्रीभगवान्‌के सिवा और कुछ भी नहीं है। बल्कि भगवान् भी उस प्रेमकी डोरमें बँधकर प्रेमीके नचाये नाचते, बाँधे बँधते, जन्माये जन्मते और मारे मरते हुए-से प्रतीत होते हैं। विशुद्ध और अनन्य प्रेमकी महत्ता और कौन कहे, यह प्रेम प्रेमार्णव भगवान्‌से ही मिलता है। दूसरेमें किसमें शक्ति है, जो इसका व्यापार करे।

महापुरुषको आत्मसमर्पण

निश्चय ही अच्छे पुरुष ग्रहण करके छोड़ते नहीं, यदि ग्रहण वास्तविक दानसे हुआ है तो, वह कभी छूटता भी नहीं। फिर बदनामी-खुशनामीका तो प्रश्न ही नहीं रह जाता। यदि हमें किसी महापुरुषने ग्रहण कर लिया है तो फिर हम यह क्यों सोचें कि किस कार्यमें उसकी बदनामी-खुशनामी होगी और उसे क्या करना चाहिये। यदि उसमें इतनी ही सोचनेकी शक्ति नहीं है तो वह महापुरुष कैसा? अतएव हम-सरीखे साधारण पुरुषोंका महापुरुषोंपर विश्वास होना ही हमारे कल्याणके लिये काफी है। परम विश्वाससे ही शरणागति होती है। आत्मसमर्पण होता है और पूर्ण समर्पण हो चुकनेपर हमारे लिये चिन्ताका कोई कारण रह ही नहीं जाता। जबतक चिन्ता है, तबतक समर्पणमें कमी समझकर उसे पूर्ण करनेकी चेष्टा रखनी चाहिये। समर्पणकी पूर्णता विश्वास और श्रद्धासे होती है। शेष प्रभुकृपा।

संत-वाणी—

शाश्वत साधन-सुधा

❖ समुद्रमें नाना नदियोंका जल गिरता है, किंतु विशाल-हृदय समुद्र सब समय मर्यादामें रहता है। इसके विपरीत छोटी नदीमें थोड़ा जल अधिक होते ही वह मर्यादा भूलकर उफनने लगती है, जैसे क्षुद्र बुद्धिवाला व्यक्ति थोड़ा धन पाते ही मदोन्मत्त होकर व्यवहार भूल जाता है।

❖ जीव संसारमें नाना प्रकारकी इच्छाएँ करता रहता है तथा उनकी पूर्तिके लिये प्रयत्न करता रहता है, जिनमेंसे कुछ इच्छाओंकी पूर्ति समयानुसार हो भी जाती है, किंतु आत्मज्ञानीको परमात्माकी प्राप्ति करनी होती है, जो इच्छाओंकी शान्ति होनेपर प्राप्त होते हैं। अतः वह सब इच्छाओंका त्यागकर पूर्ण तृप्त रहता है।

❖ अज्ञानी व्यक्ति संसारको जिस रूपमें देखता है, उसी रूपमें उसका भोग करके विषयोंके दलदलमें फँस जाता है जबकि ज्ञानी संसारकी असारताको जानते हुए उसका त्यागपूर्वक भोग करता है तथा जलमें कमलकी तरह निर्लिप्त रहता है।

❖ जीवनमें संयम, सदाचार, सेवा और मर्यादाका पालन होता है, तभी जीवन सुधरता है। जो धर्मकी मर्यादामें रहते हैं, उनका ही अन्तःकरण शुद्ध होता है। प्रत्येक पुरुषका आचरण श्रीराम-जैसा तथा स्त्रीका आचरण श्रीसीताजी-जैसा होना चाहिये।

❖ अज्ञानके कारण राग-द्वेष, अहंता, ममता, आसक्ति, शोक एवं पापोंका विस्तार होता है, जो हमारे दुःखका कारण बनता है। ज्ञानसे अज्ञानका नाश होता है तथा ज्ञानसे ही परमात्म तत्त्वका अनुभव होता है, जिसके प्राप्त होनेपर जीव शान्त एवं मुक्त होकर परम आनन्दको प्राप्त होता है।

❖ जिस अज्ञानी व्यक्तिकी देह, घर, स्त्री-पुत्रों आदिमें आसक्ति रहती है, उसकी इन्द्रियाँ रोषपूर्वक उसकी शत्रु बनकर उसे पराजित कर देती हैं, किंतु विवेकी व्यक्तिकी एकमात्र नित्य परमात्माके स्वरूपमें स्थिति रहनेके कारण उसकी इन्द्रियाँ सन्तोषपूर्वक उसकी मित्र बनकर रहती हैं तथा उसका पतन नहीं होता है।

❖ जैसे हरिण तिनकोंसे आच्छादित गड्ढेके ऊपर रखी हुई हरी-हरी घासको चरनेके लिये जाकर उस गड्ढेमें गिर जाता है, उसी प्रकार धनकी तृष्णा, भोगोंकी कामना और इन्द्रियजन्य वासनाओंके अधीन हुआ मूढ़ व्यक्ति विपत्तियोंके गर्तमें गिरकर महान् दुःखोंको प्राप्त होता है।

❖ जबतक जीवकी संसारमें ममता, आसक्ति और कामना रहती है, तबतक वह तप्त दुपहरीमें मरुस्थलके मृगकी भाँति शान्तिकी प्यास लिये व्याकुल होकर भटकता रहता है, किंतु यही ममता, आसक्ति, कामना जब भगवान्में हो जाती है तो उसकी प्यास सदैवके लिये तृप्त हो जाती है तथा वह मुक्तिका अनन्त आनन्द अनुभव करता है।

❖ भक्त और भगवान्का सम्बन्ध अबोध शिशु और माँके समान है। क्षुधा तथा व्यथासे संतप्त होकर शिशु जैसे एकमात्र अपनी माँको ही प्रेम तथा दीन भावसे पुकारता है, वैसे ही हम भी भगवान्को आर्त भावसे पुकारें तो करुणावरुणालय भगवान् खिँचे चले आयेंगे तथा हमें परम आश्रय प्रदान करके हमारा समुचित हित करेंगे।

❖ संसारमें जिससे हमारी आत्मीयता तथा अपनापन हो जाता है, उसके दोष हमें दिखायी नहीं देते हैं तथा सदैव हम उसका हित चाहते हैं, किंतु ऐसा कुछ लोगोंके प्रति ही हो पाता है। यही प्रियता जब भगवान्से हो जाती है तो सारा संसार ही हमें भगवद्स्वरूप लगने लग जाता है और हम सबका हित चाहने लगते हैं। कोई गैर नहीं, किसीसे बैर नहीं।

❖ मानवीय रिश्ते ईश्वरीय संयोग होते हैं, जिनका आधार होता है—प्रेम। जहाँ रिश्तोंमें स्वार्थ, अहंकार अथवा छल-कपट आ जाता है, वहीं दूधमें खटाईकी तरह सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं तथा उनमें अविश्वासकी गाँठें पड़ जाती हैं। अतः मानवीय व्यवहारमें सदैव पवित्रता और पारदर्शिता बनाये रखनी चाहिये।

❖ भगवान्की विलक्षण कृपा है कि साधक जैसे-जैसे अपने दोष देखता जाता है, वैसे-वैसे उसे सभी निर्दोष दिखायी देने लगते हैं तथा जैसे-जैसे उसकी स्वयंकी विषमता दूर होती जाती है, वैसे-वैसे उसे सर्वत्र समता एवं शान्तिके दर्शन होते लगते हैं। यही तत्त्वका अनुभव है।

[प्रस्तुति—आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा]

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१७, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ३।४६ बजेतक	गुरु	विशाखा दिनमें ४।१२ बजेतक	११ मई	**वृश्चिकराशि** दिनमें ९।३६ बजेसे, **कृत्तिकाका सूर्य** दिनमें ३।५ बजे।
द्वितीया अहोरात्र	शुक्र	अनुराधा सायं ६।४७ बजेतक	१२ ,,	**मूल** सायं ६।४७ बजेसे।
द्वितीया प्रात: ५।४९ बजेतक	शनि	ज्येष्ठा रात्रिमें ९।२४ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** सायं ६।४९ बजेसे, **धनुराशि** रात्रिमें ९।२४ बजेसे।
तृतीया दिनमें ७।४९ बजेतक	रवि	मूल ,, ११।५४ बजेतक	१४ ,,	**भद्रा** दिनमें ७।४९ बजेतक, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९।२८ बजे, **मूल** रात्रिमें ११।५४ बजेतक, **वृष-संक्रान्ति** रात्रिमें २।१४ बजे।
चतुर्थी ,, ९।३६ बजेतक	सोम	पू० षा० ,, २।६ बजेतक	१५ ,,	**ग्रीष्म-ऋतु** प्रारम्भ।
पंचमी ,, ११।६ बजेतक	मंगल	उ० षा० ,, ३।५५ बजेतक	१६ ,,	**मकरराशि** दिनमें ८।१५ बजेतक।
षष्ठी ,, १२।६ बजेतक	बुध	श्रवण रात्रिशेष ५।१८ बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** दिनमें १२।६ बजेसे रात्रिमें १२।२४ बजेतक।
सप्तमी ,, १२।४० बजेतक	गुरु	धनिष्ठा अहोरात्र	१८ ,,	**कुम्भराशि** सायं ५।४० बजेसे, **पञ्चकारम्भ** सायं ५।४० बजे।
अष्टमी ,, १२।४२ बजेतक	शुक्र	धनिष्ठा प्रात: ६।९ बजेतक	१९ ,,	**श्रीशीतलाष्टमीव्रत।**
नवमी ,, १२।१४ बजेतक	शनि	शतभिषा ,, ६।३० बजेतक	२० ,,	**भद्रा** रात्रिमें ११।४५ बजेसे, **मीनराशि** रात्रिमें १२।२५ बजेसे।
दशमी ,, ११।१६ बजेतक	रवि	पू० भा० ,, ६।२२ बजेतक	२१ ,,	**सायन मिथुनका सूर्य** प्रात: ५।२४ बजे।
एकादशी ,, ९।५४ बजेतक	सोम	उ० भा० ,, ५।४९ बजेतक	२२ ,,	**मेषराशि** रात्रिशेष ४।५६ बजेसे, **पञ्चक** समाप्त रात्रिशेष ४।५६ बजे, **अचला एकादशीव्रत,** (सबका), **मूल** प्रात: ५।४९ बजेसे।
द्वादशी ,, ८।९ बजेतक	मंगल	अश्विनी रात्रिमें ३।४३ बजेतक	२३ ,,	**भौमप्रदोषव्रत, मूल** रात्रिमें ३।४३ बजेतक।
त्रयोदशी प्रात: ६।७ बजेतक	बुध	भरणी ,, २।१६ बजेतक	२४ ,,	**भद्रा** प्रात: ६।७ बजेसे सायं ५।० बजेतक।
अमावस्या रात्रिमें १।२८ बजेतक	गुरु	कृत्तिका ,, १२।४० बजेतक	२५ ,,	**वृषराशि** दिनमें ७।५१ बजेसे, **अमावस्या, वटसावित्री व्रत।**

सं० २०७४, शक १९३९, सन् २०१७, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ११।१ बजेतक	शुक्र	रोहिणी रात्रिमें ११।० बजेतक	२६ मई	**करवीरव्रत।**
द्वितीया ,, १०।३३ बजेतक	शनि	मृगशिरा ,, ९।२२ बजेतक	२७ ,,	**मिथुनराशि** दिनमें १०।११ बजेसे।
तृतीया सायं ६।११ बजेतक	रवि	आर्द्रा ,, ७।४८ बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ५।५ बजेसे, **रम्भातृतीया।**
चतुर्थी दिनमें ३।५९ बजेतक	सोम	पुनर्वसु सायं ६।२५ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** दिनमें ३।५९ बजेतक, **कर्कराशि** दिनमें १२।४६ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, २।२ बजेतक	मंगल	पुष्य ,, ५।१९ बजेतक	३० ,,	**मूल** सायं ५।१९ बजेसे।
षष्ठी ,, १२।२४ बजेतक	बुध	आश्लेषा दिनमें ४।३२ बजेतक	३१ ,,	**सिंहराशि** दिनमें ४।३२ बजेसे।
सप्तमी ,, ११।१० बजेतक	गुरु	मघा ,, ४।७ बजेतक	१ जून	**भद्रा** दिनमें ११।१० बजेसे रात्रिमें १०।४६ बजेतक, **मूल** दिनमें ४।७ बजेतक।
अष्टमी ,, १०।२१ बजेतक	शुक्र	पू० फा० ,, ४।१० बजेतक	२ ,,	**कन्याराशि** रात्रिमें १०।१८ बजेसे।
नवमी ,, १०।२ बजेतक	शनि	उ० फा० ,, ४।४२ बजेतक	३ ,,	× × ×
दशमी ,, १०।१४ बजेतक	रवि	हस्त सायं ५।४५ बजेतक	४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १०।३६ बजेसे, **श्रीगंगादशहरा।**
एकादशी ,, १०।५९ बजेतक	सोम	चित्रा रात्रिमें ७।१८ बजेतक	५ ,,	**भद्रा** दिनमें १०।५९ बजेतक, **तुलाराशि** प्रात: ६।३१ बजेसे, **निर्जला [भीमसेनी] एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी ,, १२।९ बजेतक	मंगल	स्वाती ,, ९ १७ बजेतक	६ ,,	**भौमप्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, १।४५ बजेतक	बुध	विशाखा ,, ११ ३५ बजेतक	७ ,,	**वृश्चिकराशि** सायं ५।० बजेसे।
चतुर्दशी ,, ३।३६ बजेतक	गुरु	अनुराधा रात्रिशेष ४।८ बजेतक	८ ,,	**भद्रा** दिनमें ३।३६ बजेसे रात्रिशेष ४।३७ बजेतक, **व्रत-पूर्णिमा, मृगशिरा**का **सूर्य** दिनमें ११।४७ बजे, **मूल** रात्रिशेष ४।८ बजेसे।
पूर्णिमा सायं ५।३८ बजेतक	शुक्र	ज्येष्ठा ,, ४।४६ बजेतक	९ ,,	**धनुराशि** रात्रिशेष ४।४६ बजे, **पूर्णिमा।**

कृपानुभूति

भगवान् महाकालेश्वरकी कृपा

यह सच्ची घटना वर्ष २००६ ई० की है। तब मैं (म०प्र०)-के सीहोर जिलेमें कलेक्ट्रेट ऑफिसमें क्लर्कके पदपर कार्यरत था। एक विवाहके अवसरपर मुझे भोपाल आना था। सीहोरसे भोपाल करीब ३५ किलोमीटर दूर है।

चूँकि परिवारसहित जाना था, इसलिये मैंने स्कूटरसे जानेका निर्णय लिया। मेरे साथ एक समस्या यह थी कि मैं स्कूटरकी स्टेपनी बदलना नहीं जानता था। यद्यपि औजार साथमें रखे रहते थे, परंतु भगवान्-भरोसे सफर करता था। मैं परिवारसहित भोपाल पहुँचकर विवाहमें सम्मिलित हुआ और रात्रिमें वहीं रुक गया।

चूँकि प्रात:काल ८ बजे मेरे बच्चेको स्कूल भी जाना होता था, इस कारण हम लोग दूसरे दिन भोपालसे सीहोरके लिये प्रात:काल ६ बजे ही स्कूटरसे रवाना हो गये। अनायास सीहोरसे करीब १० किलोमीटर पहले सुनसान स्थलपर मेरे स्कूटरका पिछला पहिया पंचर हो गया, वहाँ आसपास कोई बस्ती नहीं थी। मैंने अपनी पत्नीसे कहा कि स्कूटर यहीं छोड़कर किसी बससे सीहोर निकल जायँगे। वहाँसे मैकेनिकको साथ लाकर गाड़ी सुधरवायेंगे, परंतु गाड़ी सुनसान जगहमें छोड़नेसे चोरी हो जानेका डर सता रहा था। निदान, निरुपाय होकर मैं मन-ही-मन महाकालेश्वर महाराजसे प्रार्थना करने लगा कि भगवन्! आप ही इस संकटसे मेरी रक्षा करें।

करीब एकाध मिनट ही हुआ होगा, तभी मैं क्या देखता हूँ कि दो मैकेनिक-जैसे लगनेवाले व्यक्ति मेरी ही ओर पैदल चले आ रहे हैं। उन्होंने पास आकर पूछा कि भाई साहब! क्या गाड़ीमें कोई खराबी आ गयी है? मैंने कहा—हाँ, मेरी गाड़ीका पहिया पंचर हो गया है, तो उन्होंने कहा कि हमलोगोंको अतिशीघ्र उज्जैन पहुँचना है, परंतु आपकी गाड़ीका पहिया बदल देता हूँ। कुछ ही मिनटोंमें फटाफट उन्होंने पहिया बदल दिया। मैं यह मन्त्रमुग्ध-सा देख रहा था कि यह सब संयोग है या श्रीमहाकालेश्वर महाराजकी कृपा है!

मेरी पत्नीने उन्हें कुछ रुपये देनेके लिये इशारा किया। मैंने बीस रुपये चाय-पानके लिये उनसे लेनेके लिये आग्रह किया, परंतु उन्होंने पैसा लेनेसे इनकार कर दिया। हमने सोचा कि कम-से-कम ५० रुपये तो देना ही चाहिये। यह सोचकर मैंने पर्स खोला परंतु वह लोग वहाँ नहीं थे। हम लोग हतप्रभ थे कि वे लोग कहाँ चले गये! मेरे बारह वर्षीय पुत्र कार्तिकने बताया कि मैंने अभी-अभी उन्हें सीहोरकी तरफ जानेवाले रास्तेमें जाते देखा है। हमलोगोंने सोचा कि चलो, थोड़ा आगे चलनेपर वे मिलेंगे तो उनसे आग्रहकर पैसे दे देंगे, परंतु जैसे-जैसे हम लोग आगे जा रहे थे, वैसे-वैसे हमलोगोंका आश्चर्य बढ़ता जा रहा था; क्योंकि वे दोनों व्यक्ति दूर-दूरतक कहीं नजर नहीं आ रहे थे।

हम लोग सीहोर पहुँच गये, पर वे लोग हमें रास्तेमें कहीं नहीं मिले। इस बीच न तो कोई वाहन गुजरा था और न ही उस रोडके अलावा कोई अन्य रास्ता था, जिससे वे कहीं निकल जाते। पैदल वे कितनी दूर जा सकते थे? यह सोचकर अचरज हो रहा था कि आखिर वे लोग गये कहाँ? मैं वर्ष १९८९ से १९९७ तक उज्जैनमें भी पदस्थ रहा हूँ, जिससे श्रीमहाकालेश्वर महाराजमें मेरी बहुत श्रद्धा है। आज भी हम लोग उस घटनाको श्रीशिवजीकी कृपा ही मानते हैं। अब जब भी कभी संकट होता है, तब स्वत: ही शिवजीका स्मरण हो जाता है और यह दृढ़ विश्वास रहता है कि वे प्रभु संकटसे हमारी अवश्य रक्षा करेंगे।

—कृष्णकुमार श्रीवास्तव

पढ़ो, समझो और करो

(१)

प्राचीन ग्रामीण जीवन

चित्तौड़-कोटा रेलवे लाइनपर चित्तौड़गढ़से लगभग ५० किलोमीटर दूरीपर एक कस्बा पारसोली बसा हुआ है, आबादी यही कोई ५० परिवारोंकी रही होगी। छोटा-सा गाँव रेलवे स्टेशनसे लगभग दो-ढाई किलोमीटर दूर पहाड़ीके चरणोंमें बसा है। डाक, ग्राम पंचायत, चिकित्सालयकी सामान्य सुविधा, सुरक्षा भगवान्के भरोसे, पुलिस थाना ३० किलोमीटर दूर बेगूँ कस्बेमें। बेगूँके निवासियोंने बेगूँको रेलवेसे जोड़नेकी बहुत कोशिश की, पर रेलवे अधिकारियोंने बेगूँको रेलवेसे नहीं जोड़ा, सो नहीं ही जोड़ा। सामान्य बस सेवा एक बार चित्तौड़गढ़से माण्डलगढ़ (जिला भीलवाड़ा) उपलब्ध थी। यह स्थिति है स्वतन्त्रताके दशककी।

यहाँ बतायी जानेवाली बात १९५० ई० के पूर्व, पर निश्चित रूपसे स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बादकी है। ग्राम निवासियोंकी सामान्य आवश्यकताएँ वहीं पूरी हो जाती थीं। संयोगसे एक बार एक ग्रामीण (पारसोली ग्राम-पंचायत-क्षेत्रका निवासी) गणेशजीके चबूतरेपर उदासीन बैठा दिखा। गाँवका एक बुजुर्ग किरानेकी घरेलू वस्तुएँ बेंचनेवाला बनिया उधरसे निकला तो उस ग्रामीणको उदास बैठे देखा। उसने दूकानदारने सहज ही पूछ लिया—पटेलजी! कहाँ बैठे हो? जब ग्रामीणने इसका कोई जवाब नहीं दिया तो बनिया रुका तथा फिर पूछा—किस चिन्तामें बैठे हो? अब ग्रामीण सजग होते हुए बोला—कुछ सामान लेने आया था पर ·····। बनियेने धैर्यसे पूछा—फिर क्या हुआ? ग्रामीण बोला—अमुक सेठकी दूकानसे सामान लेता रहा हूँ—कभी रकम कम होती है तो अगली बार चुका देता हूँ, पर इस बार ·····। बनियेने पूछा—क्या सामान नहीं मिला? ग्रामीण बोला—सामानके लिये मनाही तो नहीं की, पर साथ ही कहता है कि पहलेकी उधारी चुका दो—फिर उधार और ले जाओ। दो दिन पूर्व बहूके प्रसव हो गया है और बनिया वस्तुएँ देनेमें टालमटोल कर रहा है।

बनिया बोला—इतनी-सी बात, चलो उठो मेरे साथ। वे दोनों दूकानदारके पास गये तब भी दूकानदारने वही उत्तर दोहरा दिया—पुरानी उधारकी रकम दे दो और फिर जरूरतका सामान उधार ले लो। बनियेने प्रसवकी जानकारी दी, पर उस दूकानदारपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बात सुनी-अनसुनी कर दी।

मित्र बनिया ग्रामीणको साथ लेकर एक अन्य दूकानदारके पास आया तथा कहा कि इस ग्रामीणको जरूरतकी जो वस्तुएँ माँगे, आप दे दीजिये। वस्तुओंकी कीमत अभी ये ग्रामीण नहीं चुकायेगा, कुछ राशि मैं चुका दूँगा, आज ही। आप इस ग्रामीणको निपटाइये, मैं अभी वापस आता हूँ।

ग्रामीण एक पखवाड़ेकी अपनी जरूरतकी सभी वस्तुएँ लेकर, बनियेसे मिलकर आभार मानते हुए, शीघ्र राशि चुकानेको कहकर लौट आया। बनियेने पहलेवाले दूकानदारसे बात की, ग्रामीण है, कहाँ जायगा, किससे माँगेगा? प्रसव हुआ है। एक जगह बैठे हैं, सुख-दुःख साथ-साथ भोगेंगे। पुराना बकाया कितना है—लो, मैं रुपये लाया हूँ। बनियेने उधारीकी जितनी रकम बतायी, उसने रकम चुका दी।

दो-चार दिन बाद बनियेने दूसरे दूकानदारकी राशि भी चुका दी। वह लेनेमें संकोच कर रहा था। बनियेने कहा—भाई! तुमने तो मेरे कहनेसे सामान दिया है, पैसे लो। दूसरा दूकानदार बोला—वह ग्रामीण पटेल एक माह बाद पैसे चुकानेको कह गया है—आप क्यों दे रहे हैं? बनियेने कहा—'आपने मेरे कहनेसे सामान दिया है तो पैसे लो।' दूकानदारको पैसे लेने ही पड़े।

लगभग एक पखवाड़ेके बाद वह ग्रामीण पटेल, रुपयोंकी व्यवस्थाकर बनियोंका कर्ज चुकानेके लिये गाँव आया। सर्वप्रथम वह पिछली उधारी चुकानेके लिये जिसने और सामान उधार देनेसे मना किया था, उस बनियेके पास गया। दुआ-सलामके बाद ग्रामीणने कहा कि हिसाब देखिये, उधारी चुकानी है तो दूकानदार बोला—उधारीकी राशि तो ५-७ दिन पूर्व ही तुम्हारे

साथ आये सज्जनने चुका दी है। मैं तो नहीं ले रहा था, पर वे माने ही नहीं, रुपये लाये थे, हिसाब चुकता कर गये हैं, कोई राशि लेना बाकी नहीं है, हिसाब बराबर कर दिया है। अब तो ग्रामीणको यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि कोई जान-पहचान नहीं, सम्पर्क बढ़ा नहीं—वे क्यों रुपये दे गये हैं! मेरे लिये उनसे मिलना जरूरी हो गया है।

उस दूकानदारसे बातकर ग्रामीण अन्य दूकानदारके पास आया तथा प्रसव-सम्बन्धी लिये सामानका हिसाब पूछा—कहा, रुपये लाया हूँ; आप अपनी उधारी जमा कीजिये, आपने मुझे सामान उधार देकर बड़ा एहसान किया है। रुपये लानेमें ८-१० दिनकी देर हो गयी है, जल्दी रुपयोंका इन्तजाम नहीं हो सका, आज हिसाब चुकता कर लीजिये।

दूकानदारने बताया कि जो सज्जन तुमको लाये थे, उन्होंने ३-४ दिन बाद ही पूरा भुगतान भिजवा दिया है, तुम चिन्ता न करो, प्रसवके सामानका भुगतान मिल गया है और किसी वस्तुकी जरूरत हो तो ले जाओ, पैसा कहीं नहीं जा रहा है, आ जायगा।

दूकानदारसे ऐसा सुनना था कि ग्रामीणको आश्चर्य-मिश्रित बड़ा संतोष हुआ, वह तो देरीके लिये पछता रहा था। ये बनिया कौन हैं, मेरी सभी उधारी उन्होंने क्यों चुका दी? मेरी तो कोई जान-पहचान भी नहीं, फिर उन्होंने मेरे लिये भुगतान क्यों किया? अब तो उनसे मिलना ही जरूरी हो गया है। उनकी राशि लौटानी है, आभार मानना है, धन्यवाद देना है।

गाँव कोई बड़ा तो था नहीं, ग्रामीणने एक चक्कर लगाया पर बनिया तो कहीं दिखा ही नहीं। धैर्यके साथ दूसरा चक्कर और लगाया तो बनिया अपनी दूकानपर दिख गया। अब तो ग्रामीण पटेलका चेहरा प्रसन्नतासे खिल उठा—नमस्कार किया तथा आश्वस्त होकर बैठा, फिर तत्काल ही धैर्यके साथ बोला—सेठ साहब! गजब कर दिया आपने। मैं तो एहसानसे दब जाऊँगा। बनिया बोला—ऐसी कोई बात नहीं है। फिर पानी मँगवाकर कहा—पानी पीओ, फिर बातें भी कर लेंगे। ग्रामीणने दोहराया—आपने दोनों बनियोंको राशि चुका दी, बड़ा एहसान किया है, इसे मैं भूल नहीं पाऊँगा, कृपा कर बताइये—आपने दोनों बनियोंको कितने रुपये चुकाये? लीजिये, आप रुपये। रुपयोंका प्रबन्ध करनेमें देर हो गयी। आप विचार न कीजिये, रुपये आगे बढ़ाते हुए—गिनिये, दोनों जगहोंके जोड़ लीजिये। बनिया बोला—रुपये तो मैं लूँगा नहीं, मेरे घरपर भी तो प्रसव हो सकता है—ऐसा ही सोच लो। ग्रामीण बोला—इस कृपामिश्रित एहसानसे तो मैं दब ही जाऊँगा। बनिया बोला—रुपये रखो जेबमें—नहीं लूँगा, कहा न कि नहीं लूँगा। कभी बहूको ले आना इधर तो चुनरी ओढ़ा दूँगा—मेरी बेटी मान लेना।

यह है प्राचीन भारतीय ग्रामीण जीवन! कोई जान-पहचान परिचय नहीं, पर प्रसवके समय मदद करना ही मानव धर्म है—पुरानी उधारी भी चुका देना, प्रसूताको बेटी मान लेना और दूसरी ओर ग्रामीणका बार-बार आग्रह करना कि उधारीके रुपये तो लो—समयपर सामान दिलवा दिया—यह भी क्या कम एहसान है? कैसा रहा होगा प्राचीन भारतीय ग्राम्य जीवन!

—**जमनालाल बायती**

(२)

श्रीगीताजीके पाठका चमत्कार

घटना पिछले वर्ष २९ जनवरी सन् २०१६ ई० शुक्रवारकी है, मेरी धर्मपत्नी गीता-पाठ करनेके बाद अपने कमरेमें एक खाटपर लेट गयीं। वह कमरा इतना छोटा था कि उसमें मुश्किलसे दो खाट ही पड़ सकते थे तथा उनके बीचमें एक फुटका ही फासला था। खाटपर लेटते ही उन्होंने ज्यों ही दाहिनी ओर दीवारकी तरफ करवट ली, त्यों ही अचानक छतमें लगा पंखा धड़ामसे दोनों खाटोंके बीच उस खाटसे टकराते हुए टेढ़ा होकर गिर पड़ा, जिसपर मेरी धर्मपत्नी लेटी हुई थी। मैं बाहर बरामदेमें बैठा अध्ययन कर रहा था। आवाज सुनकर कमरेमें आया तो देखा कि धर्मपत्नी घबरायी हुई-सी भगवान्‌की कृपासे अपनी जान बच जानेका बखान कर रही हैं और छतका पंखा टेढ़ा होकर दो खाटोंके बीच इस प्रकार पड़ा है, जैसे पंखेको किसीने आसानीसे रख दिया हो, जबकि

जनवरीके ठण्डे मौसममें पंखा चालू नहीं किया गया था और आश्चर्य इस बातका था कि पंखा छतमें लगे लोहेके हुकसहित गिर पड़ा था।

यह आश्चर्यजनक घटना देखकर मनमें कई भाव आये कि वाह! भगवान् तेरी विचित्र लीला है, कैसे किसीको मौत या दुर्घटनासे बचाता है। यदि यह पंखा सीधा मेरी धर्मपत्नीकी छाती या सिरपर गिरता तो क्या स्थिति होती; क्योंकि वे क्षणभर पहले वहीं लेटी थीं, जहाँ पंखा गिरा था। यदि उन्होंने दाहिनी करवट दीवारकी ओर नहीं ली होती तो पता नहीं कितना बड़ा हादसा हो जाता। जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। वाह रे प्रभु! तेरी कृपा अपरम्पार है, महिमा निराली है और यह गीता-पाठका ही चमत्कार है। अत: परिवारमें सबको यह प्रेरणा मिली कि यह हादसा भगवान्की कृपासे ही टल सका। फलस्वरूप गीताजीमें आस्था और भी प्रगाढ़ हो गयी। **'जयभगवद्गीते! भव-भय हारिणि-तारिणि परमानन्दप्रदा।'**

—पूनमचन्द कुमार

(३)

दो आँसुओंने मनका मैल धो दिया!

बात पुरानी है, मेरे पिता चार भाई थे और उनके एक मामा भी उन्हींके साथ रहते थे, जिनका नाम था बिहारीलाल। मैं उन दिनों बहुत छोटा अवश्य था; किंतु इतना समझता था कि प्यार क्या होता है और कटुता क्या होती है। पहले तो मेरे पिता, तीनो चाचाओं और मामामें बहुत प्रेम बना रहा; सब एक ही मकानमें रहते थे और सब कारबार भी एक ही साथमें होता था। फिर न जाने क्या बात हुई कि मेरे पिताकी मृत्युके पश्चात् मामा और भानजोंमें किसी प्रकार न बनी और मामा अर्थात् मेरे बाबा मकान और गाँवको छोड़कर एक मील दूर जाकर दूसरे गाँवमें बस गये और उन्होंने एक विधवासे विवाह भी कर लिया। पहले तो मेरे चाचाओंकी उनसे दुश्मनी ही थी, किंतु अब विधवासे विवाह कर लेनेके कारण घृणा भी हो गयी। एक-दूसरेके यहाँ तीज-त्यौहार और होली-दीवालीतकमें भी कोई नहीं जाता था। कुछ लोगोंने आपसमें मेल करानेका भी प्रयत्न किया, किंतु वह सब व्यर्थ गया।

गाँवमें ताउनकी बीमारी आयी और मेरी एक बुआको उठा ले गयी। बाबाको किसीने उनके मरनेतककी खबर न दी। उसके पश्चात् मेरे सबसे छोटे चाचा द्वारिका सख्त बीमार पड़े। तीसरे ही दिन उन्होंने चलाचलीकी तैयारी कर दी। प्रात:कालसे ही वे आँखें फाड़-फाड़कर सबको देखने लगे। मेरी चाची पछाड़ खा-खाकर उनके ऊपर गिरने लगीं। धीरे-धीरे उनका बोलना भी बंद हो गया। लोगोंने यह जानकर कि द्वारिका अब केवल घड़ी-दो-घड़ीके मेहमान हैं, उन्हें चारपाईसे नीचे जमीनपर लिटा दिया। किंतु जमीनपर लेटे हुए उन्हें एक घंटा बीत गया और उनके प्राण न निकल सके। वे बराबर आँखें फाड़-फाड़ सबकी ओर ऐसे देखते रहे जैसे मानो उनकी आँखें किसीको खोज रही हों। लोगोंने घरके स्त्री-बच्चोंको एक-एक करके उनके सामने किया, किंतु फिर भी उन्हें शान्ति न मिली। अन्तमें किसीने बिहारीबाबाका नाम लिया और द्वारिकासे पूछा 'क्या तुम अपने मामाको देखना चाहते हो?' मुँहसे बोल तो नहीं निकला; किंतु मुखकी मौन आकृति और आँखोंने जैसे उनके मनकी बात कह दी हो। इस समय सारी दुश्मनीको भुलाकर बाबाको लेने आदमी दौड़ाया गया। आधे ही घंटेमें बाबा आकर मौजूद हो गये। सब पुकार उठे—'बिहारी आ गये, बिहारी आ गये।' बाबा आकर चाचाके पास बैठ गये और सजल नेत्रों तथा रुँधे कण्ठसे कहने लगे—'द्वारिका! मैं आ गया हूँ। अपने मामासे एक बात तो कर लो।' मैं पास ही खड़ा यह सब कुछ देख रहा था। चाचाकी पुतलियाँ फिरीं, मुखपर प्रसन्नताकी आभा-सी आयी, फिर उनकी आँखोंने दो आँसू ढलका दिये। चाचाकी आँखें तो पहलेसे ही खुली थीं, किंतु अब होठ भी खुल गये थे, जैसे वे होठ कुछ कहना चाहते हों। किंतु वे खुले-के-खुले ही रह गये। अपने मामाके दर्शन करके चाचा चिरनिद्रामें विलीन हो गये। इन दो आँसुओंने चाचा और बाबा दोनोंके ही मनका सारा मैल धो डाला।—**एम०आर० गुप्ता**

मनन करने योग्य

आत्महत्या कैसी मूर्खता!

पूर्वकालमें काश्यप नामक एक बड़ा तपस्वी और संयमी ऋषिपुत्र था। उसे किसी धनमदान्ध वैश्यने अपने रथके धक्केसे गिरा दिया। गिरनेसे काश्यप बड़ा दुखी हुआ और क्रोधवश आपेसे बाहर होकर कहने लगा—'दुनियामें निर्धनका जीना व्यर्थ है, अतः अब मैं आत्मघात कर लूँगा।'

उसे इस प्रकार क्षुब्ध देखकर इन्द्र उसके पास गीदड़का रूप धारण करके आये और बोले, 'मुनिवर! मनुष्य-शरीर पानेके लिये तो सभी जीव उत्सुक रहते हैं। उसमें भी ब्राह्मणत्वका तो कुछ कहना ही नहीं। आप मनुष्य हैं, ब्राह्मण हैं और शास्त्रज्ञ भी हैं। ऐसा दुर्लभ शरीर पाकर उसे यों ही नष्ट कर देना, आत्मघात कर लेना भला, कहाँकी बुद्धिमानी है? अजी! जिन्हें भगवान्ने हाथ दिये हैं, उनके तो मानो सभी मनोरथ सिद्ध हो गये। इस समय आपको जैसे धनकी लालसा है, उसी प्रकार मैं तो केवल हाथ पानेके लिये उत्सुक हूँ। मेरी दृष्टिमें हाथ पानेसे बढ़कर संसारमें कोई लाभ नहीं है। देखिये, मेरे शरीरमें काँटे चुभे हैं; किंतु हाथ न होनेसे मैं उन्हें निकाल नहीं सकता। किंतु जिन्हें भगवान्से हाथ मिले हैं, उनका क्या कहना? वे वर्षा, शीत, धूपसे अपना कष्ट निवारण कर सकते हैं। जो दु:ख बिना हाथके दीन, दुर्बल और मूक प्राणी सहते हैं, सौभाग्यवश वे तो आपको नहीं सहन करने पड़ते। भगवान्की बड़ी दया समझिये कि आप गीदड़, कीड़ा, चूहा, साँप या मेढक आदि किसी दूसरी योनिमें नहीं उत्पन्न हुए।'

'काश्यप! आत्महत्या करना बड़ा पाप है। यही सोचकर मैं वैसा नहीं कर रहा हूँ; अन्यथा देखिये, मुझे ये कीड़े काट रहे हैं, किंतु हाथ न होनेसे मैं इनसे अपनी रक्षा नहीं कर सकता, परंतु मैं अपने इस शरीरका परित्याग नहीं करता हूँ; क्योंकि मुझे भय है कि मैं इससे भी बढ़कर किसी दूसरी पापयोनिमें न गिर जाऊँ।

अकार्यमिति चैवेमं नात्मानं संत्यजाम्यहम्।
नातः पापीयसीं योनिं पतेयमपरामिति॥

(महा० शान्ति० १८०। २१)

आप मेरी बात मानिये, आपको वेदोक्त कर्मका वास्तविक फल मिलेगा। आप सावधानीसे स्वाध्याय और अग्निहोत्र कीजिये। सत्य बोलिये, इन्द्रियोंको अपने काबूमें रखिये, दान दीजिये, किसीसे स्पर्धा न कीजिये। विप्रवर! यह शृगाल-योनि मेरे कुकर्मोंका परिणाम है; क्योंकि मैं नास्तिक, सबपर सन्देह करनेवाला तथा मूर्ख होकर भी अपनेको पण्डित माननेवाला था। मैं तो रात-दिन अब कोई ऐसी साधना करना चाहता हूँ, जिससे किसी प्रकार आप-जैसी मनुष्ययोनि प्राप्त हो सके।'

काश्यपको मानवदेहकी महत्ताका ज्ञान हो गया। उसे यह भी भान हुआ कि यह कोई प्राकृत शृगाल नहीं, अपितु शृगाल-वेशमें शचीपति इन्द्र ही हैं। उसने उनकी पूजा की और उनकी आज्ञा पाकर घर लौट आया। [**महाभारत**]

श्रद्धा-सुमन

परमभागवत सनातन धर्म-परम्पराके एकनिष्ठ वाहक अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्कपीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराजने **कुछ समय पूर्व (मकर संक्रान्ति, सं० २०७३ वि०) अपना पाञ्चभौतिक कलेवर त्यागकर नित्य गोलोकधामको प्रयाण किया। भगवान् अंशुमालीके उत्तरायणमें प्रवेश करते ही पावन वेलामें आपने दिव्यधामकी यात्रा आरम्भ की। महापुरुषोंकी रहनी-कहनी दिव्य ही होती है—यह इसीका प्रमाण है। यद्यपि महाराजश्रीके जानेसे जो स्थान रिक्त हुआ है, उसकी पूर्ति कठिन है तदपि उनका पावन व्यक्तित्व एवं कृतित्व सदैव हमें प्रेरित करते हुए पथ-प्रदर्शन करता रहेगा। अपने उत्तम गुणों एवं सत्त्वमार्गमें निरन्तर निरत रहनेके कारण उनका गोलोकगमन शोकका विषय नहीं है, तथापि उनकी अनुपस्थिति सनातनधर्मके लिये अपूरणीय क्षति अवश्य है।**—सम्पादक

अप्रैल २०१६ से मार्च २०१७ तकके नवीन प्रकाशन

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
2037	अध्यात्म पथप्रदर्शक	६०
2047	भूले न भुलाये	२०
2058	सेठजीके अन्तिम अमृतोपदेश	१
2042	गीता व्याकरणम्—सजिल्द	३५
2066	श्रीभक्तमाल	२३०
2067	आदर्श बाल-कहानियाँ	२५
2068	आदर्श बाल-कथाएँ	२५
	मलयालम	
2044	गीता—सटीक, पुस्तकाकार	२०
	असमिया	
2041	गीता प्रबोधनी	५०
	बँगला	
2040	श्रीविष्णुपुराण—सटीक	१५०

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
	नेपाली	
2055	रामायणके आदर्श पात्र	१५
2045	सुन्दरकाण्ड—सटीक	१०
2048	शरणागति	६
2046	हनुमानचालीसा—सटीक	५
2050	नारायणकवच	३
2051	गजेन्द्रमोक्ष	३
2052	आदित्यहृदयस्तोत्र	३
2053	रामरक्षास्तोत्र	३
2049	अमोघ शिवकवच	३
	तेलुगु	
2038	श्रीमद् आन्ध्रभागवतमु-I	२५०
2039	श्रीमद् आन्ध्रभागवतमु-II	२५०

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
2056	विल्वाष्टोत्तरशतनाम पूजा	५
	ओड़िआ	
2054	गीता—पॉकेट साइज, सजि.	२५
	तमिल	
2043	श्रीशिवमहापुराणम्	३००
	अंग्रेजी	
2059	Stories that Transform Life	10
2063	Ideal Women	8
2064	Nal Damayanti	5
	मराठी	
2061	श्रीमहाभारत कथा	३५
2062	श्रीसकलसंतगाथा	२५०

अब उपलब्ध

वामनपुराण-सटीक (कोड 1432)—यह पुराण मुख्यरूपसे त्रिविक्रम भगवान् विष्णुके दिव्य माहात्म्यका व्याख्याता है। इसमें भगवान् वामन, नर-नारायण, भगवती दुर्गाके उत्तम चरित्रके साथ भक्त प्रह्लाद तथा श्रीदामा आदि भक्तोंके बड़े रम्य आख्यान हैं। इसके अतिरिक्त शिवजीका लीला-चरित्र, जीमूतवाहन-आख्यान, दक्ष-यज्ञ-विध्वंस, हरिका कालरूप, कामदेव-दहन, अंधक-वध, लक्ष्मी-चरित्र, प्रेतोपाख्यान, विभिन्न व्रत, स्तोत्र और अन्तमें विष्णुभक्तिके उपदेशोंके साथ इस पुराणका उपसंहार हुआ है। मूल्य ₹१५०

साधनाङ्क (कोड 604)—यह अङ्क साधनापरक बहुमूल्य मार्गदर्शनसे ओतप्रोत है। इसमें साधना-तत्त्व, साधनाके विभिन्न स्वरूप, ईश्वरोपासना, योगसाधना, प्रेमाराधना आदि अनेक कल्याणकारी साधनों और उनके अङ्ग-उपाङ्गोंका शास्त्रीय विवेचन है। मूल्य ₹२५०

ज्योतिषतत्त्वाङ्क (कोड 1980)—ज्योतिषके विभिन्न विषयोंके सांगोपांग परिचयसे युक्त कल्याणके विशेषाङ्करूपमें पूर्वप्रकाशित इस विशेषाङ्कको अब पुस्तकरूपमें प्रकाशित किया गया है। मूल्य ₹१३०

आयुर्वेदिक ओषधियाँ उपलब्ध हैं

गीताभवन आयुर्वेद संस्थान (गीताप्रेस, गोरखपुर व्यवस्थाद्वारा संचालित) पो० स्वर्गाश्रममें वैज्ञानिक तकनीकसे योग्य वैद्योंकी देख-रेखमें गंगाजलके योगसे प्राकृतिक जड़ी-बूटियोंद्वारा नाना प्रकारकी आयुर्वेदिक ओषधियोंका निर्माण होता है, जिसे वैज्ञानिक तकनीकसे सीलबन्द किया जाता है। ये ओषधियाँ गीताप्रेस, गोरखपुरकी प्रायः सभी शाखाओंमें एवं अनेक स्टेशन-स्टालोंपर भिन्न-भिन्न परिमाणमें उपलब्ध हैं। अधिक जानकारीके लिये निम्नलिखित पतेपर सम्पर्क करना चाहिये—

गीताभवन आयुर्वेद संस्थान

पो०-स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश, (उत्तराखण्ड), पिन २४९३०४; फोन नं० ०१३५-२४४००५४, २१२२०१४

e-mail : gbas.gitabhawan@gmail.com

प्र० ति० २०-३-२०१७

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2017-2019

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2017-2019

नवीन प्रकाशन—ग्रन्थाकार रंगीनमें अब छपकर तैयार
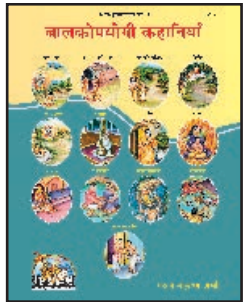
चार रंगों एवं आर्ट पेपरपर छपी प्रस्तुत पुस्तकमें भक्त सुव्रत, समर्थ स्वामी रामदास, महामुनि वसिष्ठ, दिलीप, भक्त सूरदास, मीरा, होली, नवरात्र आदिके विषयमें सरल भाषामें जानकारी दी गयी है। मूल्य ₹२५
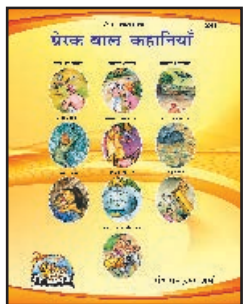
चार रंगों एवं आर्ट पेपरपर छपी प्रस्तुत पुस्तकमें साँप और किसान, ब्राह्मण और ठग, शिकारी और जाल, बन्दर और मगर, ब्राह्मणी और नेवला आदिके विषयमें सरल भाषामें जानकारी दी गयी है। मूल्य ₹२५

चार रंगों एवं आर्ट पेपरपर छपी प्रस्तुत पुस्तकमें महर्षि वाल्मीकि, महर्षि व्यास, सत्यकाम जाबाल, भक्त परीक्षित्, मातृपितृ-भक्त श्रवण कुमार, तपस्याका फल आदिके विषयमें सरल भाषामें जानकारी दी गयी है। मूल्य ₹२५

नवीन प्रकाशन अब उपलब्ध

श्रीसकळसंतगाथा (कोड 2062) मराठी—

प्रस्तुत ग्रन्थमें श्रीज्ञानेश्वर, श्रीनिवृत्तिनाथ, श्रीसोपानदेव, श्रीमुक्ताबाई, श्रीचोखामेळा, श्रीएकनाथ महाराज, श्रीनिळोब महाराज आदि महाराष्ट्रके कुछ संतोंकी वाणियाँ प्रकाशित की गयी हैं। श्रीतुकाराम गाथा एवं नामदेवांची गाथा अलगसे प्रकाशित है। मूल्य ₹२५०
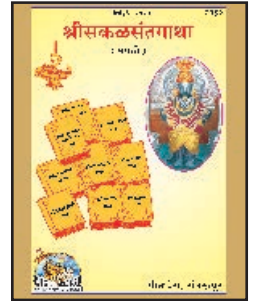
पिछले कुछ दिनोंसे अनुपलब्ध पुस्तकें अब उपलब्ध

गीता तत्त्वविवेचनी (कोड 457) अंग्रेजी— इसमें २५१५ प्रश्न और उनके उत्तरके रूपमें प्रश्नोत्तर शैलीमें गीताके श्लोकोंकी विस्तृत व्याख्याके साथ अनेक गूढ़ रहस्योंका सरल, सुबोध भाषामें सुन्दर प्रतिपादन किया गया है। मूल्य ₹१५०

श्रीमद्भागवतमहापुराण (कोड 564-565) अंग्रेजी— भगवान् शुकदेवद्वारा महाराज परीक्षित्को सुनाया गया भक्तिमार्गका तो मानो सोपान ही है। इसके प्रत्येक श्लोकमें श्रीकृष्ण-प्रेमकी सुगन्धि है। दोनों खण्डोंका मूल्य ₹४४०

खुल गया है—झाँसी (उत्तर प्रदेश) रेलवे स्टेशन प्लेटफार्म नं० १, **रायगढ़** (छत्तीसगढ़) प्लेटफार्म नं० १, **बिलासपुर** (छत्तीसगढ़) प्लेटफार्म नं० १ पर गीताप्रेस, गोरखपुरका पुस्तक-स्टॉल।

1. कल्याणके पाठकोंकी शिकायतोंके शीघ्र समाधानके लिये कल्याण-कार्यालयमें दो फोन 09235400242/09235400244 उपलब्ध हैं। इन नम्बरोंपर प्रत्येक कार्य-दिवसमें दिनमें 9.30 बजेसे 4.30 बजेतक सम्पर्क कर सकते हैं। अतिरिक्त नं० 9648916010 है जिसपर SMS एवं WatsApp की सुविधा भी उपलब्ध है।

2. कल्याणके सदस्योंको मासिक अंक निश्चित रूपसे उपलब्ध हो, इसके लिये वार्षिक सदस्यता शुल्क ₹ २२० के अतिरिक्त ₹ २०० देनेपर मासिक अंकोंको भी रजिस्टर्ड डाकसे भेजनेकी व्यवस्था है।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो०—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५